हिन्दी का व्यावहारिक रूप

विनयमोहन शर्मा,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

राधाकृष्ण प्रकाशन

मूल्य : ५ रुपये

प्रकाशक
ओम्प्रकाश,
राधाकृष्ण प्रकाशन
२, अन्सारी रोड, दरियागंज,
दिल्ली-६

मुद्रक
रूपक प्रिन्टर्स
दरियागंज, दिल्ली-६

दो शब्द

'हिन्दी के व्यावहारिक रूप' में परिनिष्ठित हिन्दी (खड़ी बोली) के अहिन्दी प्रान्तों में बोले जाने वाले रूपों की बानगी प्रस्तुत की गई है। यद्यपि भारतीय संविधान में उसकी प्रतिष्ठा स्वाधीनता के उपरान्त हुई है तो भी वह सदियों पूर्व से ही देश की सम्पर्क भाषा रही है। प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि धार्मिक, राजनीतिक, व्यापारिक, व्यावसायिक आदि कारणों से मध्य देश की—संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाएँ समय-समय पर सम्पर्क-भाषाएँ रही हैं। हिन्दी ने उन्हीं की उत्तराधिकारिणी होने के कारण यही काम किया है। पर उसका मध्य-देशीय रूप ही सर्वत्र प्रचलित नहीं हुआ। वह क्षेत्रीय भाषाओं की प्रकृति के साथ ही चलती रही है (हिन्दी क्षेत्रों में भी इसका एक ही रूप प्रचलित नहीं है। उदाहरण के लिए मैंने छत्तीसगढ़ क्षेत्र के 'रूप' का आभास इस पुस्तक में दिया है।)

बहुत समय से इसके विभिन्न चलित रूपों के अध्ययन की ओर मेरी रुचि रही है। प्रस्तुत अध्ययन में भाषा-विज्ञान की सम्पूर्ण शोध-प्रक्रिया का पालन नहीं हो पाया है। भाषाशास्त्रीय अनुसंधाताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित हो, यही इसका मुख्य उद्देश्य है।

दक्षिण की द्रविड़-परिवार की भाषाओं के उदाहरण जुटाने में डॉ० पांडुरंग राव ने तथा मुद्रण के लिए पाण्डुलिपि तैयार करने में डॉ० चरणदास शास्त्री ने मेरी बहुत सहायता की है।

इन आत्मीयों के प्रति आभार प्रकट न कर इनका स्नेहपूर्वक स्मरण ही करना चाहता हूँ। इसके प्रकाशक श्री ओम्प्रकाश ने आग्रहपूर्वक इसे लिखवाकर प्रकाशित करने का श्रम उठाया है। तदर्थ इसके लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

कुरुक्षेत्र

विनयमोहन शर्मा

क्रम

भारत की अन्तरप्रान्तीय व्यवहार-भाषा

भारत अपनी विस्तीर्णता, विशालता और विविधता के कारण संसार का एक अपूर्व भूखण्ड है। यहाँ की सभ्यता विविध जातियों के विभिन्न संस्कारों का अद्भुत मिश्रण है। मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा के उत्खनन से सिंधु-जल धौत भाग के लगभग पाँच सहस्र पूर्व सभ्यता के इतिहास पर जो प्रकाश पड़ा है उससे ज्ञात होता है कि भारत में आर्यो के पूर्व निषाद्, द्रविड़ और किरात जातियाँ बसती थीं। काल-प्रवाह में उनकी ताम्रयुगीन सभ्यता कैसे भूगर्भित हो गई, यह जाना नहीं जा सका। पर आज भी उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में ब्राहुई बोली के अवशेष से अनुमान लगाया जा सकता है कि आर्यो के आगमन के समय द्रविड़ जाति का उत्तराखण्ड में संचार अवश्य था। समस्त देश में आर्य-द्रविड़ और आष्ट्रिक भाषा-परिवारों की विभिन्न भाषा और बोलियाँ प्रचलित है। डा० कद्रे की गणना के अनुसार उनकी कुल संख्या १५०० है। भारत भौगोलिक दृष्टि से दो भागों में विभाजित हो गया है। हिमपर्वत से विन्ध्यपर्वत के भाग को उत्तरापथ और विन्ध्य पर्वत से दक्षिण में कन्याकुमारी तक के भाग को दक्षिणापथ कहा गया है। उत्तरापथ में आर्यो का आवास होने से उसे आर्यावर्त भी कहा जाता रहा है। आर्य भारत में कब आये, कितनी टोलियों में आये, इसे ठीक-ठीक कहना कठिन है। जो हो, पर हर्ष है कि उनकी भाषा का (उनका बाहर से आना भी कुछ विद्वानों को मान्य नहीं है) लगभग ३५ सौ वर्षो का इतिहास अखण्डित रूप से विद्यमान है। उसी के माध्यम से उन्होंने न केवल उत्तरापथ में अपितु दक्षिणापथ में भी अपनी संस्कृति का संचार और विस्तार किया। दक्षिणापथ में पौराणिक आख्यायिकाओं के अनुसार सर्वप्रथम महर्षि अगस्त्य ने विन्ध्य के दुर्गम वनों-उपवनों, पर्वतों और सरिताओं को लाँघ कर आर्य-भाषा और संस्कृति का प्रचार किया। दक्षिणापथ के राष्ट्र प्रदेश को तो अगस्त्य के अनुयायियों ने अपनी भाषा और आचार-विचार की दृष्टि से आत्मसात कर लिया, पर उसके नीचे आन्ध्र, कर्नाटि, तमिल और केरल प्रदेशों को वे न्यूनाधिक मात्रा में केवल प्रभावित कर सके, पचा नहीं पाये। फिर भी अगस्त्य ऋषि का दक्षिण में बड़ा सम्मान है। उनके नाम से संबद्ध वहाँ कई स्थान हैं। उन्होंने तमिलनाड में बसकर वहाँ की भाषा और साहित्य की अपूर्व

सेवा की है। वे तमिल भाषा के प्रथम वैयाकरण माने जाते हैं। प्रतीत होता है, प्राचीन आर्यों की अपनी निवास-भूमि—दक्षिणापथ—की भाषा और वहाँ के आचार-विचार के साथ तादात्म्य स्थापित करने के कारण ही आन्ध्र, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम और तमिल भाषाएं उनकी भाषा और संस्कृति से भी प्रभावित हो सकीं। तेलुगु की अपेक्षा कन्नड़ और कन्नड़ की अपेक्षा मलयालम संस्कृत से अधिक प्रभावित है। और, यद्यपि तमिल भाषा इतनी समृद्ध कही जाती है कि वह संस्कृत की वैसाखी की अपेक्षा नहीं रखती तो भी अनुसंधान करने पर ज्ञात हुआ है कि उसमें अभी भी लगभग एक हजार शब्द संस्कृत के विद्यमान हैं। जो भाषा समृद्ध होना चाहती है वह विभिन्न भाषाओं के शब्दों का आदान-व्यापार स्थगित नहीं रख सकती। यद्यपि यह सत्य है कि भारत राजनीतिक कारणों से छोटे-बड़े राज्यों में विभाजित रहा है तो भी उसकी सांस्कृतिक एकता कभी खण्डित नहीं हो पाई। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने उचित ही कहा है—"शताब्दियों के संघर्षों के बावजूद भारत ने समान संस्कृति का विकास किया है जिसमें अनेक प्रकार की विभिन्नता होते हुए भी ऐसी मूलभूत एकता है जो जन-जन को समाज का एक अंग बनाए हुए है। उनमें एक ही संस्कृति के प्रति भक्ति-भाव है।"

इस प्रकार की सांस्कृतिक एकता को अखण्डित रखने में जहाँ जनता का समान धार्मिक-भाव कारण बना है वहाँ एक व्यवहार-भाषा का अपनाव भी उसकी रक्षा कर सका है। यदि एक व्यवहार-भाषा को स्वीकार न किया गया होता तो दक्षिण के 'आचार्यों' ने उत्तर भारत में अपने धार्मिक विश्वासों का किस प्रकार प्रचार किया होता? उत्तर के बड़े-बड़े साम्राज्यों का सुदूर दक्षिणापथ के प्रदेशों में राजकाज कैसे सम्पन्न हुआ होता?

सारे देश को भावात्मक एकता के सूत्र में बाँधने वाली एक भाषा रही है जो कभी संस्कृत, कभी पाली, कभी प्राकृत और कभी अपभ्रंश के रूप में गृहीत होती आई है। अपभ्रंश का स्थान अब हिन्दी ने ग्रहण कर लिया है। ये भाषाएं किस प्रकार देशव्यापी बनीं, इस पर हम यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करेंगे। संस्कृत तो आर्यों के साथ ही देश के विभिन्न स्थानों में संचरित होती रही है। सामान्य धारणा है कि संस्कृत पुस्तकीय भाषा-मात्र रही है, बोलचाल की नहीं। पर बात सर्वथा ऐसी नहीं है। स्वर्गीय आनन्द शंकर ध्रुव का मत है कि-"वैयाकरणों द्वारा विशिष्ट रूप में ढाली जाने पर भी संस्कृत उत्तर भारत के बहुभाग में संस्कारी जनता की बोल-चाल की भाषा रही है।" और, जब आर्यों का दक्षिणापथ में प्रवेश हुआ तो वहाँ भी वह व्यवहार की भाषा बन गई। द्रविड़ भाषाओं के अध्येता रावर्ट काल्डवेल भी इसी मत के समर्थक हैं। अशोक-काल में बौद्ध प्रचारकों ने दक्षिणापथ में ही नहीं, सिंहल द्वीप तथा सुदूर दक्षिण-पूर्व में भी संचार किया और पालि भाषा का प्रचार किया था। श्रीलंका की वर्तमान सिंहली भाषा पालि की ही

उत्तराधिकारिणी है। जैनियों के दक्षिण-संचार से प्राकृत और अपभ्रंश का दक्षिण में प्रवेश हुआ।

धार्मिक कारणों से ही नहीं, व्यावसायिक और राजनीतिक कारणों से भी आर्य-भाषाओं से दक्षिण परिचित रहा है। दक्षिण में प्रतिष्ठान (वर्तमान 'पैठण') प्राचीनकाल में व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ के श्रेष्ठी (सेठ) और महाजन देश-भर में आते-जाते थे। ईसा की पहली शताब्दी में 'परिप्लस' नामक मिश्री लेखक ने प्रतिष्ठान के नाना प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है। उत्तर भारत के व्यापारियों का उज्जयिनी के मार्ग से तमिलनाड तक बराबर आवागमन होता रहता था।

अर्नेस्ट हारिज ने अपनी 'शार्ट हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर' में लिखा है कि अवध, मगध और उज्जैन व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र थे और वहाँ पालि भाषा का *विशेष रूप से अध्ययन होता था।*

प्राचीन तमिल-साहित्य से ज्ञात होता है कि ईसा के २५० वर्ष पूर्व से ईसा की प्रथम शताब्दी के पश्चात् तक पुलिकत के पूर्व और पटकल के पश्चिम तक का प्रदेश आर्य-सत्ता के अन्तर्गत था और वहाँ आर्य-भाषा प्रचलित थी।[१]

ईसवी-पूर्व सन् ३७३ में प्रियदर्शी अशोक का साम्राज्य सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ था। उसने अपने राज्य के कोने-कोने में चट्टानों तथा स्तम्भों पर राज्याज्ञाए खुदवाई थीं जो पालि भाषा में हैं। अशोक ने अपने अभिलेखों को 'धर्मलिपि' कहा है क्योंकि उसी में बौद्ध-धर्म प्रचारित हुआ है। मद्रास में गंजाम नगर के निकट जाड़ के प्राचीन दुर्ग में अशोक की ११ धर्मलिपियाँ उत्कीर्ण हैं। मैसूर, आंध्र, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में भी ये लिपियाँ वर्तमान हैं। 'देवाना पिय पियदसी' राजा के अभिलेखों से प्रकट होता है कि समस्त देश में तत्कालीन पालि भाषा समझी जाती थी। दक्षिण में ईसा की प्रथम शती से पाँचवीं शती तक के प्राप्त अभिलेखों की भाषा प्राकृत है। एक लेख में इक्ष्वाकु कुल के माठरी पुत्र श्री वीरू पुरुष दद्व नामक राजा का उल्लेख है।[२] उसके अक्षर ईसा सन् की तीसरी शताब्दी के प्रतीत होते हैं। कांची में पल्लवों के राज्य की स्थापना के पश्चात् वहाँ, ह्वेनसांग के कथनानुसार, मध्य हिन्दुस्तान की भाषा बोली जाती थी।[३] राष्ट्रकूट शासकों के काल में मान्यखेट साहित्य का केन्द्र था। राष्ट्रकूट वंशज अमोघवर्ष ने ईसा सन् ८१८ में इसे राजधानी के रूप में बसाया था। सन् ९७३ तक इसकी समृद्धि होती रही। इस अवधि में यहाँ जैन धर्म और प्राकृत तथा अपभ्रंश-साहित्य का विकास

---

१. भारतीय इतिहास संशोधन मण्डल (पुणे) जिल्द १, संख्या ३, पृष्ठ ३
२. इंडियन ऐंटीक्वेरी, पृष्ठ-२५६
३. भारतीय इतिहास-संशोधन मण्डल (पुणे) जिल्द १, संख्या ३५६, पृष्ठ ३४

होता रहा। पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का कथन है, "प्रकृति-कविता व्याकरण के सहारे समझने लायक हो चली, या यों कहो कि जैसे पहले गंगाप्रवाह में संस्कृत का बाँध बाँध कर नये कटे किनारों की नहर बना ली गई थी और फिर मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री की नहरें छाँट ली गई जिनके किनारे भी संस्कृत की तरह काटे-तराशे गए किन्तु भाषा-प्रवाह (सच्ची गंगा) अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी—के रूप में बहता गया। अपभ्रंश एक देश की भाषा नहीं, कहीं-कहीं नहरों का पड़ोस होने से उसे नहर के नाम से भले ही पुकारते हों, किन्तु वह देश भर की भाषा थी जो नहरों के समानान्तर बहती चली जाती थी" (नागरी प्रचारिणी पत्रिका)। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का भी यही मत है। वे अपनी 'आर्यभाषा और हिन्दी' में लिखते हैं कि "तुर्की विजय के पहले भारतीय चालू या कथ्य बोलियों में सबसे अधिक प्रचलित शौरसेनी अपभ्रंश थी। उन दिनों पश्चिमी अपभ्रंश का स्थान आजकल की हिन्दुस्थानी का-सा था। उसे आधारभूत मानकर विभिन्न साहित्यिक बोलियों की रचना हुई, जिसमें स्थानीय उपादानों का उपस्थित रहना अवश्यम्भावी था" (पृ० १८९)। उनका यह मत भी मान्य है कि "पश्चिमी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी कुछ अंशों में ब्रजभाषा हुई। ब्रज भाषा १२०० से १८५० ईसवी तक के सुदीर्घ काल के अधिकांश भाग में सारे उत्तरी भारत, मध्यभारत, राजस्थान और कुछ अंश तक पंजाब की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक भाषा बनी रही।" डा० सुनीतिकुमार ने उत्तर भारत के जहाँ कई प्रान्तों की चर्चा की, वहाँ बंगाल और असम में ब्रजभाषा-प्रवेश पर बल नहीं दिया। पर उन्हें अन्ततोगत्वा स्वीकार करना ही पड़ा कि "ईसवी सन् १,००० के आसपास बंगला के कविगण संस्कृत के अलावा और भी जोड़ी-गाड़ी हाँकते रहे हैं। उनमें एक स्थानीय प्राचीन बंगला भाषा थी और दूसरी भाषा पश्चिमी या शौरसेनी अपभ्रंश···इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि एक हजार वर्ष पूर्व शुद्ध बंगला भाषा के आसपास, बंगाल के साहित्यिकों के बीच शौरसेनी अपभ्रंश नाम से परिचित प्राचीन पछाहनी हिन्दी का एक प्राचीनतर साहित्यिक प्रकार-भेद प्रचलित था" (रजत-जयन्ती ग्रंथ, पृष्ठ २१०) और यह स्पष्ट ही है कि यह हिन्दी का प्राचीनतर प्रकार-भेद ब्रज का रूप ही था। वास्तविकता यह है कि असम और बंगाल दोनों प्रान्तों में भी ब्रजभाषा साहित्यिक रूप में ग्रहण की गई थी। असम और उत्कल में जो ब्रज-बुलि की रचनाएँ प्राप्त होती हैं वे हिन्दी के मैथिली कवि विद्यापति से अत्यधिक प्रभावित प्रतीत होती हैं। बंगाल के गौड़ीय वैष्णव भक्तों ने राधाकृष्ण का लीलागान जिस ब्रजबुलि में विभोर होकर किया है वह ब्रजबुलि ब्रजभाषा के माधुर्य से अत्यधिक रसमयी बन गई है। इन भक्तों के ब्रजभाषा में भी पद मिलते हैं। आज बंगला के पण्डित भले ही ब्रजबुलि को स्वतंत्र भाषा कहें पर भाषातत्व की दृष्टि से उसे ब्रजभाषा से सर्वथा विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। नेपाल तक में पूर्वी

हिन्दी—मैथिली—का सम्मान पाया जाता है। आगस्टस कानरेडी ने ईसा की सत्रहवीं शताब्दी में होने वाले दामोदर कवि के 'हरिश्चन्द्रनृत्यम्' नाटक की भाषा पर आलोचना करते हुए लिखा है कि "वह एक ऐसी मैथिली भाषा है जो कभी हिन्दी और कभी बँगला की ओर झुकती है।"[1] असमी-साहित्य में ब्रजभाषा मिश्रि ब्रजबुलि का प्रमुख स्थान है। असम संत शंकरदेव का एक पद है—

अथिर धन जन जीवन यौवन
अथिर अेहु संसार।
पुत्र परिवार सबहि असार
करबे को हरि सार॥
कमल दल जल चित चंचल
थिर नहे तिल अेक।
नाहि भवमय भोग हरिहर
परमपद परतेक॥
कहतु 'शंकर' अे दुख सागर
पार करहु हृषीकेश।
तुहु गति मति देहु श्रीपति
तत्र पदं अुपदेश॥[2]

बँगला के वैष्णव कवि बलदेवदास ने राधाकृष्ण की आरती गाई है—

जय जय मंगल आरति दुहुंकि।
श्याम गोरी छवि उठत झलकि॥
नवघने जनु थिर बिजुरी बिराजे।
ताहे मणि-अभरण अंगहि साजे॥
करे लह दीपावलि हेमथालि।
आरति करतहि ललिता आलि॥
सबहुँ सखीगण मंगल गाओये।
कोइ करतालि देह कोइ बजाओये॥
कोइ कोइ सहचरी मनहि हरीखे।
दुहुँक अंग पर कुसुम बरीखे॥
इह रस कहतहि बलदेव-दासे।
दुहुँ रूपमाधुरी हेरइते आशे॥[3]

१. ब्रजबुलि साहित्य (रामपूजन तिवारी) प्रथम संस्करण, पृष्ठ १४
२. ब्रजबुलि, पृष्ठ १४
३. वही, पृष्ठ २४५

मध्य-युग में वैष्णव भक्तों के प्रभाव के कारण ब्रज भाषा देशव्यापी काव्य-भाष बन गई। उत्तर में कश्मीर के द्विगर्त प्रदेश के कवि भी उसमें सोत्साह रचना करते थे।

पंजाब में हिन्दी का अस्तित्व मुसलमानों के आगमन के पूर्व ही विद्यमान पाया जाता है। वहाँ आधुनिक-भाषा-काल के प्रारम्भ से ही ब्रजभापा और खड़ी बोली में रचनाएँ मिलती हैं। नाथ पंथियों की सबदी में खड़ी बोली का रूप है। उदाहरणार्थ—"किसका बेटा किसकी बहू, आप सबारथ मिलता सहू। जेता फूल तेता आल, चरपट कहे सवाल।" सिख-गुरुओं में नानक, गुरु गोविन्दसिंह आदि की पुष्कल ब्रजभाषा-रचनाएँ उपलब्ध हैं। पंजाब ने हिन्दी के आविर्भाव काल से लेकर वर्तमान काल तक अनेक यशस्वी कवियों और लेखकों को जन्म दिया है। इसी प्रकार गुजरात में हिन्दी को अपनाने का प्रारम्भ से ही क्रम दिखायी देता है। प्राचीन राजस्थानी जिसे गुजराती लेखक 'जूनी गुजराती' भी कहते हैं, राजस्थानी से सर्वथा अभिन्न है (प्राचीन काल में गुजरात की सीमा जोधपुर तक रही है।) गुजराती कवि भालण को ब्रजभाषा का आदि कवि भी कहा जाता है। श्री के० का० शास्त्री ने हिन्दुस्तानी (गुजराती दैनिक) पत्र के ११ नवम्बर १९५९ में एक लेख लिखकर इन्हें सूरदास के पूर्व ब्रजभाषा में काव्य लिखने का श्रेय प्रदान किया है। परन्तु अब यह मान्यता सन्देहास्पद बन गई है। भालण को 'सूर' का परवर्ती मानने का पक्ष प्रबल हो रहा है। गुजराती समीक्षक हिन्दी-काव्य के वैभव को अंगीकार करने में संकोच नहीं करते। श्री दी० ब० क० लाल ध्रुव ने 'जयन्ती-व्याख्यानों' के पृष्ठ ६१-६२ पर लिखा है,"विक्रम की सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य देशी भाषाएँ बहुत पिछड़ी हुई थीं। जब सिंधी केवल दूसरी अवस्था में थी, जब बंगाली ने पगों चलना सीखा था, जब मराठी केवल किसी आधार की आशा में भूमि पर पड़ी थी और जब गुज़राती का कदलीवन एक अच्छे माली के अभाव में सूखा ठूंठ जैसा दिखाई दे रहा था, उस समय हिन्दी का अक्षयवट अपने विशालकाय तने और अनेक योजन घेर लेने वाली जटा से, प्रसिद्ध पंचवटी को विस्मृत करा दे, ऐसा फल-फूल रहा था। बौद्धधर्म के सहस्र शिखा-वाले दीप ने निर्वाण पाया, उसके पश्चात् के मंथन काल में धर्ममूर्ति रामचन्द्र और प्रेममूर्ति कृष्णचन्द्र की भावना ने सार्वजनिक प्रचार और प्रसार पाया। उसने सात्विक प्रेम भक्ति में लीन और राजस प्रेम भक्ति में मग्न तुलसीदास, सूरदास तथा अन्य अनेक कवियों को जन्म दिया, जिन्होंने हिन्दी का साहित्य-सिन्धु छलका दिया। यह हिन्दी-भाषा सम्पूर्ण आर्यावर्त में प्रसारित थी। जबकि अन्य भाषाएँ देश विशेश के नाम से प्रसिद्ध थीं तब हिन्दी विशेषकर 'भाषा' के गौरवमय नाम से विख्यात थी। प्राचीन काल में लोकभापा कोई न कोई प्राकृत होने पर भी शिष्टमंडल में संस्कृत की जो प्रतिष्ठा थी वही प्रतिष्ठा अर्वाचीन काल में हिन्दी

को प्राप्त थी। उसमें मात्र काव्य-आख्यान और रासो ग्रन्थों की ही रचना नहीं हुई, अपितु रस, अलंकार, छंद, संगीत और नीति के शास्त्रीय विषयों की भी चर्चा हुई थी। राजदरबारों में हिन्दी-कविता का पोषण तथा पूजन होता था। भारत के केन्द्र दिल्ली में ही नहीं, अपितु जयपुर, जोधपुर, उदयपुर आदि राजस्थान राज्यों में, गुजरात तथा सुदूर महाराष्ट्र में हिन्दी के कवि सम्मान के पात्र थे। इस प्रकार हिन्दी भाषा हिमालय से लेकर विन्ध्याचल और सतपुड़ा की पहाड़ी लाँघकर दक्षिण में भी पगडंडी बना चुकी थी। उस समय के राज-रजवाड़ों में कवि-कोविदों में, साधु-सन्तों में यदि कोई सम्मान-प्राप्त भाषा थी तो वह हिन्दी थी।[1]

गुजरात के ज्ञानमार्गी और भक्तिमार्गी संतों ने हिन्दी में प्रचुर काव्य-रचना की है। ब्रजभाषा के अध्ययन-अध्यापन के लिए भुज में अठारहवीं शताब्दी में महाराजा लखपति ने एक पाठशाला की स्थापना की थी जिसमें दूर-दूर के कवि काव्य-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते और उपाधि प्राप्त करते थे। गुजरात में ब्रजभाषा को राज्याश्रय प्राप्त था। स्वयं महाराजा लखपति ने हिन्दी के कवि सुन्दरदास से 'सुन्दर शृंगार' की टीका लिखवाई थी। खेद है कि स्वाधीनता के पश्चात् यह पाठशाला बंद कर दी गई। राजकोट के राजकुमार महेरावणसिंह ने १८७२ ईसवी में ८४ सर्गों का 'प्रवीण सागर' नामक महाकाव्य ब्रज और डिंगल भाषा में लिखा। सूफी कवियों ने पंजाब, गुजरात और सिंध में भी मिश्रित भाषा में रचनाएं कीं। (गुजरात की गौरीबाई की सरस हिन्दी-रचनाएँ भी उपलब्ध हैं।) वैष्णव कवियों के अतिरिक्त गुजराती जैन-साधुओं ने भी हिन्दी-साहित्य की बहुमूल्य सेवा की है। उन्होंने रास, चतुष्पदी, ढाल, चोढालिया, वार्ता, विनती, वन्दना, लावनी आदि रचनाएँ कीं। भाषा के उदाहरण के लिए संवत् १८५६ में विद्यमान रूपमुनि की निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं। जिनमें यत्र-तत्र गुजराती की गंध भी है।

"प्रथम नमो गुरु चरण कुं पायो ज्ञान अंकूर।
जसु प्रसाद उपकार थीं, सुख पावे भरपूर॥
संवत अठारा अप्पने कहवाया, फागुन मास सवाया जी।
कृष्ण सप्तमी अति हितकारी, सूर्य वार जयकारी जी।
एकतालीसमी ढाल बपाणी, रूपमुनि हितकारी जी।
सुनै सुनावै रहै हितकारी, लहै मंगल जयकारी जी॥

सुदूर दक्षिण में भी ब्रजभाषा के प्रति रुझान रहा है। श्रीमान स्वाति तिरुनाल श्री राम वर्मा त्रावणकोर के साहित्य-प्रेमी राजा थे। उन्होंने लगभग सौ वर्ष पूर्व मणिप्रवाल शैली में एक ग्रन्थरचना की है। जिसमें ब्रजभाषा की भी खड़ी

---

१. सरस्वती (दिसम्बर, '६२), पृष्ठ ५५५

वोली के पुट सहित पंक्तियाँ हैं। उन्होंने सूर और मीरा के पद-संगीत की लहरियों का स्मरण दिलाने वाले ब्रजभाषा में लगभग ४० पद लिखे हैं। उदाहरण के लिये एक पद दिया जाता है—

रामचन्द्र प्रभु ! तुम विन और कौन खवर ले मेरी।
वाज रही जिनकी नगरी मों सदा धरम की भेरी।
जाके चरण कमल की रज से तिरिया तनकू फेरो।
औरन के कछु और भरोसा हमें भरोसा तेरो।

मलयालम के हास्य रस कवि कुंचन नंवियार की कविताओं में भी कहीं-कहीं हिन्दी का सुन्दर अनुकरण मिलता है (हिन्दी प्रचार का इतिहास, आन्ध्र, पृष्ठ ६६)

महाराष्ट्र में संगीत के वोल ब्रजभाषा से ही लिये जाते हैं। वहाँ के संतों ने जिनमें महानुभावी पंथी चक्रधर महदाइसा, दामोदर पंडित वारकरी पंथी ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, रामदास आदि उल्लेख्य हैं, प्रचुर हिन्दी-पद लिखे हैं। चक्रधर तो दक्षिण में मुसलमानों के प्रवेश से पूर्व विद्यमान थे। कन्नड़ में भी ब्रज भाषा मिश्रित रचनाएं प्राप्त होती है। तंजाउर के मराठा राजा शाहजी ने अपने राज्य-काल में (सन् १६८४ से १७१२ ई० तक) संगीत और साहित्य की अपूर्व सेवा की। उन्होंने स्वयं तेलुगु और मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी साहित्य-रचना की। हिन्दी में 'रावा वंशीधर विकालस' और 'विश्वातीत विलास नाटक' नामक यक्षगान लिखे हैं। यक्षगान आन्ध्र का प्रसिद्ध लोक-नाट्य है। हिन्दी के ये यक्षगान श्री राममूर्ति रेणु द्वारा प्रथम बार प्रकाश में लाए गए हैं। 'विश्वातीत विलास' नामक यक्षगान की निम्न पँक्तियाँ हैं—

"सुन सखी पिउ मेरों कहाँ
नैना दोऊ देखें चाहें।
धीर धरूँ सखी कैसे के
मन में सहे विना रहे न जाय।
कित धुंडों हम काहे को पूछूँ
कौन वन अव जाये ॥
चन्द्र चंदन मलयानिल न सहे
दूर करो घनसार।
जल विन मीन तलफत है
जैसे वीरगति हमारी होउ ॥
पिक सुक जैसे सारिका सोर करें
वहु दूर निकालो देऊ।

घरि पल छन एक जुग से जाते
अब मोसूं रहु न जाय ।।[1]

शाहजी महाराज का राजकवि जयराम स्वयं ब्रजभाषा के अतिरिक्त कई भाषाओं में काव्य-रचना करता था। शाहजी की राजसभा में मराठी, व्रज, गुजराती, वख्तर, पंजाबी, हिन्दुस्तानी, वागलानी, फारसी, उर्दू और कानिड़ी के कवि थे। सभा में जो कवि बाहर से आते थे वे जयराम को समस्या देते और स्वयं पूर्ति भी किया करते थे। जयराम ने शाह जी की प्रशंसा में कहा है—

'तेरे गुन गनिबे के विधिना विधु ये मेरु करि,
तारा मुकुताहल माल मनो गही है।
साहे गुन जस धाम गम थक्यो अष्टे ज्याम
याते कहे जयराम तेरे सम तूही है।

बंगाल में मुर्शिदाबाद के पास गंगा के पश्चिमी किनारे देवीपुर नामक एक स्थान है, जहाँ प्राचीन समय में धार्मिक व्यक्ति मंदिर-मठ आदि प्रतिष्ठित करके जीवन-यापन किया करते थे। वहाँ के एक अखाड़े में एक बड़ा शिलालेख है। वह विक्रम सं० १७९१ का है। उसमें बँगला के साथ-साथ हिन्दी भाषा का भी प्रयोग किया गया है। यह शिलालेख श्री पूर्णचंद नाहर ने सं० १९८३ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कराया है। उसकी भाषा का नमूना इस प्रकार है—

श्री कृष्ण वासुदेव जू सदा सहाय
श्री गणशोह नमं श्री श्री——
श्री रघुनाथाय नमं
श्री लक्ष्मणाय नमं
सं० १७८१ वैपाक मास सुदी तीज। श्री नृप गंधर्व सिंह मूव मोल
ले वयौ धर्म को वीर ।।
देव पुर अस्थानय।
हर्बाविदंग के तीर। जर परीदि लीनों सोई श्री हरि
समन को धीर ।। रतनेसुर की नारि ने दयौ पुसी कर मोल ।।

व्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी बोली भी क्रमश: व्यावहारिक भाषा बनती गई और अन्तरप्रान्तीय भाषा का स्थान ग्रहण करती गई। व्रजभाषा केवल साहित्य में प्रयुक्त होती रही। यह सत्य है कि मुसलमान शासकों ने खड़ी बोली हिन्दी को प्रचारित करने में अधिक सहायता पहुँचाई। पर दक्षिण में हिन्दी का प्रवेश मुसलमान-आक्रमण का परिणाम नहीं है। वहाँ हिन्दी का संचार आर्यों के दक्षिण-प्रवेश का स्वाभाविक परिणाम है। दक्षिण के आर्यों ने अपने मूल स्थान—मध्य देश से

---

१. पाक्षिक युग-प्रभात, (१६ नवम्बर, १९६२)

संपर्क बनाये रखने के लिए वहीं की भाषा को देश-भाषा के रूप में स्वीकार किया। मेरा विश्वास है कि 'नाथों' के दक्षिणापथ में अपने मत-प्रचार के कारण भी हिन्दी प्रचारित हुई और उसने अपभ्रंश को व्यवहार-भाषा के पद से अपदस्थ किया। गोरखनाथ का समय क्या है, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। परंतु महाराष्ट्रीय विद्वानों की मान्यता है कि 'नाथों' ने बारहवीं शताब्दी में दक्षिण में धार्मिक जागृति का महान कार्य किया। अलाउद्दीन खिलजी ने सन् १२९४ में दक्षिणापथ में सैनिक अभियान किया और देवगिरि पर आक्रमण कर वहाँ के राजा को पराजित किया। यह दक्षिणापथ में उत्तर से प्रथम मुसलमानी प्रवेश था। सन् १३१० में उसने (अलाउद्दीन ने) पुनः दक्षिण में प्रवेश किया और मदुरा तक सेना ले गया। तीन वर्ष पश्चात् उसने चौथी बार दक्षिण पर चढ़ाई की और देवगिरि के यादव राजा को हराकर महाराष्ट्र में लूटमार की। इस प्रकार उसकी सेनाएँ बराबर दक्षिण के सम्पर्क में बनी रहीं। अतः हिन्दी का जो रूप वहाँ विद्यमान था उससे उत्तर की खड़ी बोली, ब्रज और स्थानीय बोली के मिश्रण से एक नई व्यवहार भाषा प्रचलित हो गई जो दक्खिनी हिन्दी या हिन्दवी कहलाई। यह भाषा अरबी-फारसी प्रभाव से बिलकुल बोझिल नहीं थी। दक्षिण के बहमनी राज्य के विभिन्न भागों विशेषकर बीजापुर और गोलकुंडा में इसका बराबर विकास होता रहा। उत्तर भारत के सूफियों ने दक्षिण में जाकर वहाँ की प्रचलित भाषा में अपने मत का प्रचार करने की दृष्टि से साहित्य-रचना की। उनमें ख्वाजा बंदा नवाज गेसूदराज को सर्वप्रथम दक्खिनी साहित्य का आरम्भकर्ता माना जाता है। यहाँ कतिपय सूफी फकीरों की भाषा के उदाहरण दिए जा रहे हैं जिसमें उनके द्वारा व्यवहृत हिन्दी के रूप का अनुमान हो सकेगा। शाहजी लिखते हैं—

तूँ कादिर कर सब जग को रोजी देवे।
तूँ सभों का दाना बीना सब जग को सेवे
एकस काटी मूला देवे एकस पाटी बाज
केतों भीख मँगावे केतों देवे राज
केतों पाट पितम्बर देता केतों सरकी लाया
केते ज्ञान भगत बैरागी, केते मूर्ख गंवार
एक जिन एक मानस कीता एक पुरुप एक नार

उनके पुत्र बुरहानुद्दीन का शेर (?) है—

यह सभ प्रगट आप छिपाया,
कोई न पाया अन्त।
माया मोह में सब जग बाँधा,
क्यों कर सूझे पन्त।

सूफियों के अतिरिक्त दक्षिण के कई मुसलमान बादशाह हिन्दवी और ब्रज

में रचनाएँ करते थे और अपनी अभिव्यक्ति में भारतीयता का रंग चढ़ाते थे। मुगल सम्राटों के युग से दक्षिण के विभिन्न राज्यों में बराबर उत्तरवासी सिपाहियों की भर्ती होती रही है। स्थानीय निवासियों का उनसे सम्पर्क रखने के लिए हिन्दी या हिन्दुस्तानी सीखनी पड़ती थी। बाबर के भारत-प्रवेश के पूर्व उत्तर-भारत में हिन्दी लोक भाषा बन गई थी। उसने दौलतखाँ लोदी से हिन्दुस्तानी के माध्यम से बात की थी।

हिंदी या हिंदुस्तानी के अन्तरप्रान्तीय व्यवहार के और भी अनेक ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। टी० मौट्टे का 'अर्ली योरोपियन ट्रेवलर्स इन नागपुर टेरीटरीज़' में यात्रा-वर्णन छपा है जिसका एक अंश इस प्रकार है—

"७ अप्रैल, सन् १७६६। आज प्रातःकाल मुझसे कहा गया कि काँकेर का राजा रामसिंह आ रहा है। अभिवादन के पश्चात् मैंने उससे उत्तरी सरकार के मार्गों में पड़ने वाले स्थानों के सम्बन्ध में प्रश्न किये। राजा ने स्वयं अनेक प्रश्नों के उत्तर दिये। मुझे जानकर आश्चर्य हुआ कि राजा हिन्दुस्तानी भाषा बड़ी धाराप्रवाह गति से बोल रहा था।" (पृष्ठ १३२)

महाराष्ट्र में लोक नाटक, तमाशा, गोंधल आदि में हिन्दी का प्रयोग होता था। 'तमाशा' के एक दृश्य में खड़ी बोली का चलता रूप देखिए—

"छड़ीदरा—हम छड़ीदार, पोशाक पेना जड़ी जरदार—गले में डाला भाव मोतन का हार। ज्ञान ध्यान की बाँधी तलवार—भगवान के नाम को पुकारू ललकार, ये ही हम छड़ीदार कहलाते हैं।

पाटील—तुमने कहाँ नौकरी बनाई ?

छड़ीदार—दश अवतार में।

पाटील—कौन से दश अवतार में ?

छड़ीदार—मच्छ, कच्छ, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, श्रीकृष्ण, बौद्ध, कलंकी ऐसे महाराज के दश अवतार में नौकरी बनाई।

इसके बाद छड़ीदार दशों अवतारों के गुण-वर्णन करता है।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हमारे देश में अति प्राचीन काल से परस्पर व्यवहार की एक भाषा रही है और वह भाषा मध्य प्रदेश[1] की आर्य परि-

---

१. मध्यदेश की सीमा समय-समय पर परिवर्तित होती रही है। मनुस्मृति में उसकी सीमा है—"हिमपर्वत और विन्ध्यपर्वत के मध्य में और विशनत से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम में जो है वह मध्यदेश कहलाता है।" विनयपिटक में पश्चिम में ब्राह्मणों का पूनप्रदेश, पूरब में कजंगल नगरके कहासाल, दक्षिण पूर्व में सलिलवती नदी, दक्षिण में सतेकन्निक नगर और उत्तर में उसीरधज पर्वत। उत्तर और दक्षिण के ये स्थान कहाँ हैं, इसका ठीक निर्णय अभी नहीं

वार की भाषा रही है। देश विभिन्न प्रदेशों में विभाजित रहा है और वहाँ अपनी क्षेत्रीय भाषाएँ रहीं, परन्तु धार्मिक और राजनीतिक कारणों से साधु-संत तथा सामान्य जन आवागमन के आधुनिक साधनों के अभाव में भी हिमालय से कन्या-कुमारी तक और द्वारिका से पुरी और काठमांडू तक यात्राएँ किया करते थे और कभी संस्कृत, कभी पाली, कभी प्राकृत, कभी अपभ्रंश का सहारा लिया करते थे और अपभ्रंश के पश्चात् हिन्दी के माध्यम से अपना व्यवहार साधित करते रहे हैं।

हो सका। मार्कण्डेय पुराण में विदेह और मगध को मध्यदेश नहीं गिना गया है। इसके अनुसार कोसल और काशी तक का ही क्षेत्र मध्यदेश माना गया है। मुसलमान-काल में यही भाग हिन्दुस्तान कहलाने लगा। उत्तर भारत का समस्त भाग हिन्दुस्तान के अन्तर्गत आ गया।

मध्यदेश की भाषा—हिन्दी

हिन्दी आर्य-भाषा की उत्तराधिकारिणी है। आर्यों के आदि स्थान के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कोई उन्हें विदेशी और कोई यहीं का मूल निवासी सिद्ध करते हैं।[१] आर्यो का आदि स्थान जो भी रहा हो पर यह निर्विवाद है कि उनकी भापा के क्रमिक विकास का परिणाम ही उत्तर भारत की आधुनिक भाषाएँ हैं जो विभिन्न नामों, रूपों और भागों में प्रचलित हैं।

हमारे लिए यह गर्व की वात है कि "भारतवर्ष के अन्तर्गत आर्य भापा का लगभग ३५०० वर्ष पुराना अविच्छिन्न इतिहास उपलब्ध है।"[२] आर्यो द्वारा व्यवहृत भापा का प्रारम्भिक रूप 'छान्दस्' कहलाता था जो उनके प्राचीनतम ग्रंथ—ऋग्वेद की भापा है। इस वेद की रचना एक ही समय में एक ही व्यक्ति द्वारा एक स्थान पर नहीं हुई। परन्तु विद्वानों का विश्वास है कि उसका सम्पादन ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व मध्यदेश में हो गया था। मध्यदेश की भौगोलिक सीमाएँ भी परिवर्तित होती गई हैं।[३] मनुस्मृति में मध्यदेश की सीमा इस प्रकार निर्दिष्ट है—"कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और शूरसेन सहित ब्रह्मदेश के उत्तर में हिमवान् पर्वत, दक्षिण में विन्ध्य, पश्चिम में विशनत और पूर्व में प्रयाग है। यही

---

१. आर्यों के पूर्व पुरुषों को भाषा शास्त्रियों ने 'विरोस्' नाम दिया है। यह कहना कठिन है कि वे अविभाजित समाज रूप में सर्वप्रथम कहाँ रहते थे और कब ईरान और भारतवर्ष में आये। मैक्समूलर के मत से उनकी आदि भूमि मध्य एशिया है। पर इस मत के विरोध में उत्तरी ध्रुव, पूर्वी रूस, दक्षिणी रूस, स्कैनडेनेविया, हंगरी, पोलैंड आदि स्थानों को आर्यो का आदि देश सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। ईरान और भारत में वे, कहा जाता है, कई टोलियों में विभिन्न कालों में आये।

२. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी (सुनीतिकुमार चटर्जी), पृष्ठ ५

३. कुरुक्षेत्रं च मत्साश्च पांचालाः शूरसेनकाः एवं ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तदिनन्त हिमवद्धिन्ध्योर्मध्ये यत्प्राग् विनशनादपि। प्रत्यगेवप्रयागाचे मध्यदेशःप्रेगतिता

—मनु० २,१९२२

मध्यदेश है।" मनुस्मृति की 'मध्यदेश' की सीमा वहुत से परवर्ती ग्रंथकारों को भी मान्य रही। यही मध्यदेश आर्य-भाषाओं का उद्‌गम और विकास-स्थान माना जाता है, जो समय-समय पर संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के नाम से अभिहित की गई। लगभग १५०० ईसा पूर्व से लगभग ५०० ईसा पूर्व तक प्राचीन भारतीय आर्य भाषा-काल माना जाता है। ईसा सन् के लगभग पांच सौ वर्ष पूर्व से लगभग १००० ई० तक मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के उदय और ह्रास का काल अनुमानित किया जाता है। इस काल में इसके कई प्रादेशिक भेद हो गए थे। शूरसेन में वोली जाने वाली प्राकृत शौरसेनी, शूरसेन और मगध के मध्य वोली जाने वाली प्राकृत अर्धमागधी अथवा कोसली, मगध में वोली जाने वाली प्राकृत मागधी तथा महाराष्ट्र में वोली जाने वाली प्राकृत महाराष्ट्री कहलाती थी, परन्तु महाराष्ट्री के सम्वन्ध में एक मत यह भी प्रचलित है कि वह महाराष्ट्र में प्रचलित होने के कारण 'महाराष्ट्री' नहीं कहलाई, प्रत्युत सव प्राकृतों में 'प्रकृष्ट'[१] होने के कारण उसे यह नाम दिया गया। डा० मनमोहन घोष के मत का समर्थन करते हुए डा० सुनीतिकुमार चटर्जी लिखते हैं—"महाराष्ट्री अपनी आद्यावस्था में शूरसेनी का ही एक पश्चरूप थी, जो दक्षिण में ले जाई गई और वहाँ उसमें स्थानीय प्राकृत के शव्द तथा रूप आ जाने पर उसका वहाँ के साहित्य में उपयोग किया गया। शौरसेनी अपभ्रंश के वीच की एक अवस्था का ही नाम महाराष्ट्री है।" इनके अतिरिक्त—पैशाची, आवन्त्य आदि प्राकृत भाषाएँ भी प्रचलित थीं।

ये सारी प्राकृतें धीरे-धीरे अपभ्रंश में विकसित होती गई। प्राकृत चन्द्रिका में अपभ्रंशों के अनेक उपभेद दिए गए हैं।[२] ईसा की लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में इन्हीं अपभ्रंशों में धीरे-धीरे आधुनिक आर्यभाषाओं और वोलियों के रूप परिलक्षित होने लगे। भाषा-वैज्ञानिकों का कथन है कि साहित्य-भाषा के साथ-साथ लोक-भाषा वरावर प्रचलित रही है और वही साहित्य-भाषा को जन्म देती रही है। छान्दस् संस्कृत में लौकिक भाषा के तत्व निश्चय ही सम्मिलित रहे हैं।

---

१. महाराष्ट्राश्रया भाषांप्रकृष्टं प्राकृतं विदुः—दंडी काव्यादर्श (चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी) पृ० ३१

२. (१) व्राचड़, (२) लाट, (३) वैदर्भ, (४) उपनागर, (५) नागर, (६) कवेर, (७) ग्रावन्त्य, (८) पांचाल, (९) टक्कर, (१०) माला, (११) कैकय, (१२) गौड़, (१३) ग्रौड़, (१४) पाश्चात्य, (१५) पाडंउ, (१६) कौतल, (१७) सैहल, (१८) कालिंग, (१९) प्राच्य, (२०) कर्णाट, (२१) कांँच्य, (२२) द्राविड़, (२३) गौर्जर, (२४) ग्राभीर, (२५) मध्यदेशीय, (२६) वैताल।

लौकिक भाषा साहित्य में व्यवहृत होने के कारण यद्यपि व्याकरण के जटिल नियमों से वद्ध हो जाती है फिर भी वह लोक-भापा की ओर उन्मुख रहती ही है और फिर धीरे-धीरे उसका साहित्य-रूप भी तत्कालीन लोक-भाषा के इतने सन्निकट आ जाता है कि व्याकरण के वन्धन शिथिल होने लगते हैं। यही अवस्था उसके नये नामकरण का कारण वनती है। जो यह मानते हैं कि संस्कृत कभी लोक-भापा नहीं रही, सीमित शिष्ट समुदाय की भाषा रही है, वे अर्ध सत्य का प्रतिपादन करते हैं। यह ठीक है कि लोक अर्थात् वोलचाल की भाषा का संस्कारी अर्थात् व्याकरणिक रूप साहित्य या ग्रंथी भापा वनकर शिष्ट समाज में प्रचलित होता है पर वह इतना भिन्न नहीं होता कि जनसामान्य के लिए वोध्यगम्य ही न रह जाय। हमारा विश्वास है कि आधुनिक आर्य-भाषाओं की आदि भापा संस्कृत केवल ग्रंथी या शिष्ट समाज की भाषा नहीं रही, वोलचाल की भाषा भी रही है। कल्हण ने राजतरंगिणी में कश्मीर के सम्वन्ध में सगर्व लिखा है—"यत्रस्त्रीणामपि किमपरम् मातृभापावदेव । प्रत्यावासेविलसितवचः प्राकृतंसंस्कृतं च"। श्री आदित्यनाथ झा, उपकुलपति, वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय ने अपने एक दीक्षान्त भाषण में कहा था, 'संस्कृत न (केवल) धर्मभापा और साहित्य-भाषा थी, वह वहुकाल तक लोक-भापा और शासन-भापा भी थी।" इसी प्रकार पालि और प्राकृतों के सम्वन्ध में भी जो यह कहते हैं कि वे वोलचाल की भाषा न होकर अनेक वोलचाल की भापाओं के संश्लेपण से अस्तित्व में आई थीं, वह पूर्ण सत्य नहीं है। हमारा विश्वास है कि कोई भी साहित्य-भापा सर्वथा कृत्रिम नहीं होती, वह लोक-भापा का ही एक परिनिष्ठित रूप होती है।

संस्कृत नाटकों में विभिन्न प्राकृतों के प्रयोग से स्पष्ट है कि वे जन-सामान्य में प्रचलित रही होगी। नाटकों में सामाजिक जीवन की यथार्थता को चित्रित करने के लिए पात्रों की स्थिति के अनुरूप भाषाओं का प्रयोग किया जाता था। उनका रंगमंच पर अभिनय भी होता था। इसी से भरत ने नाट्यशास्त्र में सरल वोधगम्य भापा प्रयोग के सम्वन्ध में निर्देश किया है—"मृदुललितपदाढ्यं गूढ़-शब्दार्थहीनम् जनपद सुखवोध्यं युक्तिमन्नृत्यभोज्यम् वहुक्तरस मार्ग संधिसंधान-युक्त स भवति शुभकाव्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्।" (१७,१२३) प्रा० ई० जे० राप्सनका कथन है कि संस्कृत उत्तर-पश्चिम भारत की वोलचाल की भाषा थी, जिसके विकास का पता सम्पूर्ण साहित्य दे रहा है; जिसकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ उत्तर-पश्चिम भारत के शिलालेखों में वहुत सीमा तक सुरक्षित हैं। प्रारम्भ में यह एक जिले की, फिर वर्ण तथा धर्म की अन्त में सारे भारतवर्ष में एक धर्म, राजनीति और संस्कृति की भाषा वन गई। समय पाकर तो यह विशाल राष्ट्रीय भापा वन गई—साहित्य में ऐसे उल्लेख पाए जाते हैं जिससे ज्ञात होता है कि रामायण और महाभारत जनता के सामने मूल रूप में मात्र पढ़कर सुनाए जाते थे।

"और यह तभी संभव हो सकता होगा जब जनता वस्तुतः संस्कृत के श्लोकों का अर्थ समझती होगी।" इस प्रकार हम देखते हैं कि हिमालय और विन्ध्य के बीच फैले हुए सम्पूर्ण आर्यावर्त्त में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। इसका व्यवहार शिष्टजन ही नहीं, सामान्य जन भी करते थे। जो पाणिनि की विशाल संस्कृत व्याकरण-प्रणाली को बोलचाल की भाषा पर आधारित नहीं मानते, वे भ्रम में हैं। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का कथन है कि संस्कृत भाषा के सौभाग्य से इसी समय पाँचवीं शताब्दी ई० पू० एक महान वैयाकरण (पाणिनि) का पश्चिमोत्तर प्रदेश में उदय हुआ, जहाँ के जनसाधारण की बोलियाँ भी अब तक छान्दस् तथा ब्राह्मण रूप के ध्वनि-विज्ञान तथा व्याकरण की दृष्टि से ही इतनी निकट थीं कि उनसे भिन्न प्रतीत न होकर केवल उनका एक लौकिक या प्रचलित रूप बनी हुई थीं। इस लौकिक रूप पर भी स्थानीय जन भाषाओं की शब्दावली और मुहावरों का प्रभाव पड़ चुका था।"[1] आगे वे पुनः लिखते हैं, "पाणिनि के समय में लौकिक प्रचलित संस्कृत का भारतीय आर्य प्रादेशिक बोलियों में सम्भवतः वही स्थान रहा होगा जो आधुनिक भाषा हिन्दुस्तानी का है। जनसाधारण सर्वत्र संस्कृत समझ लेता था।"[2] व्याकरण भाषा का निर्माण नहीं करता, उसका कार्य तो भाषा की बहुप्रचलित प्रवृत्तियों को नियमबद्ध करना मात्र है। अतः सामान्यतः व्याकरण उसी भाषा का बनाया जाता है जो लोक प्रचलित होती है और भाषा का विकास क्रमशः होता है। शताब्दियाँ बीतती जाती हैं और उसके रूपों में परिवर्तन होता जाता है। धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ और क्रान्तियाँ परिवर्तन की गति में क्षिप्रता अवश्य ला देती हैं। जनसमूह उच्चारण-सुविधावश भाषा की क्लिष्टता को कम से कम करता जाता है और जन प्रचलित भाषा का रूप पूर्ववर्ती भाषा से स्पष्टतः परिवर्तित दृष्टिगोचर होने लगता है तब शिष्टजन और भाषा-शास्त्री उसे नये नाम से अभिहित करने लगते हैं। सामान्य रूप से भूतकाल की भाषा और बोलियों की प्रवृत्तियों को जानने का साधन साहित्य-कृति, शिला-लेख, ताम्रपट आदि होते हैं। (अतः) आधुनिक भाषाओं के विकास-चिह्न लगभग १००० ई० से लेकर उत्तरकालीन अपभ्रंश-ग्रंथों में लक्षित होने लगते हैं। इसीसे हम इस काल को आधुनिक आर्य भाषाओं का, जिसमें हिन्दी भी सम्मिलित है, उदयकाल मान सकते हैं। हिन्दी की उदयोन्मुखता इससे दो तीन शती पूर्व दिखाई देने लगी थी। इससे राहुल सांकृत्यायन ने सिद्ध-साहित्य के आधार पर हिन्दी के आदिकाल को ईसा की लगभग आठवीं शताब्दी तक पीछे धकेल दिया है। बोल-चाल की भाषा को साहित्य में सहसा स्थान प्राप्त नहीं होता, वह धीरे-धीरे ही

---

१. देखिए भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृ० ६५-६६
२ वही, पृ० ६६

साहित्य में प्रतिष्ठित होती है। आठवीं शताब्दी में लोक-भाषा का कौन-सा रूप प्रचलित था, इसका केवल अनुमान लगाया जा सकता है। निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है क्योंकि आज उपलब्ध प्राचीन साहित्य को अपने रचनाकाल की भाषा का असंदिग्ध रूप मानने में आपत्ति हो सकती है। प्रतिलिपिकारों ने कितनी भी सावधानी बरती हो, जाने-अनजाने उनकी भाषा की छाप उसमें आए बिना न रही होगी। यद्यपि साधु-सन्तों की वाणी (भाषा) को श्रद्धालु जन कम ही विकृत करता है क्योंकि उसमें वह अलौकिक शक्ति निहित मानता है, फिर भी हस्तलिपिकार के लेख सर्वथा निर्दोष नहीं कहे जा सकते।

दसवीं से बारहवीं शती तक पश्चिमी अपभ्रंश बड़े वेग के साथ प्रचलित थी और संस्कृत तथा अन्य प्राकृतों के अतिरिक्त सर्वसाधारण की साहित्यिक तथा दैनिक जीवन के व्यवहार की भाषा बनी हुई थी। हेमचन्द्र (१०८८-११६८ ई०) द्वारा प्रणीत प्राकृत व्याकरण में पश्चिमी अपभ्रंश के प्रचलित साहित्य के उदाहरणों से हमें पता चलता है कि उस काल की भाषा हिन्दुस्तानी (खड़ी बोली) के कितने निकट थी—

"भल्ला हुआ जु मारिया वहिणि-म्हारा कन्तु"[१]

अतः हमें हिन्दी का उद्योन्मुख काल ग्यारहवीं शती के आसपास ही मानना होगा। परन्तु राहुल सांकृत्यायन सिद्धों की लगभग नवीं शताब्दी की रचनाओं को भी हिन्दी के अन्तर्गत मानते हैं। सिद्ध भुसुकपा की एक रचना है —

काहेरि घोणि मेलि अच्छ हूँ कीस।
वैठिल हाक पड़अ चउदीस
अप्पण माँ से हरिणा वइरी
खणह ज छाडअ भुसुक अहेरी।
णिशि अंधारी मूसा अरअ अचारा
अमिअ भखम मूसा करअ अहारा।
मार रे जोइया मूसा पवना
जेण तूटई अवणा गवणा।

—हिन्दी काव्यधारा, पृ० १३२

उपर्युक्त उदाहरण में हिन्दी (राजस्थानी) का आभास मिलता है। वह अपभ्रंश से क्रमशः विकसित होती प्रतीत होती है।

हिन्दी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश के लोक प्रचलित रूप से मानी जाती है। उसकी सीमा पश्चिम में जेसलमेर, पूर्व में भागलपुर, उत्तर में शिमला और उससे संलग्न नेपाल के पूर्वी छोर के पहाड़ी भाग, उत्तर पश्चिम में अम्बाला,

---

१. सुनीतिकुमार चटर्जी, आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १७९

दक्षिण-पश्चिम में खण्डवा तथा दक्षिणपूर्व में रायपुर मानी गई है। परन्तु यह केवल स्थूल मान्यता है क्योंकि पूर्वी हिन्दी की एक उपबोली छत्तीसगढ़ी रामपुर तक ही सीमित नहीं है, उसके आगे बिलासपुर, रामगढ़, और सरगुजा जिलों में भी वही मुख्यतः बोली जाती है (ज्ञात नहीं प्रसिद्ध भाषा विज्ञान-वेत्ताओं ने छत्तीसगढ़ के मुख्य केन्द्र बिलासपुर को और उससे सम्बद्ध जिलों को छत्तीसगढ़ी क्षेत्र से पृथक् क्यों रखा है। सम्भवतः ग्रियर्सन की भाँति ही परवर्ती लेखकों के भ्रम का कारण रही है)। इसी प्रकार उसकी दक्षिण-पश्चिम की सीमा खण्डवा तक ही नहीं, उससे आगे बुरहानपुर तक फैली हुई है। सच बात तो यह है कि 'बोलियों' की सीमा निश्चित करना बहुत कठिन कार्य है।

उल्लिखित सीमा के अन्तर्गत हिन्दी के निम्न रूप प्रचलित हैं। १—पश्चिमी हिन्दी—जिसमें ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली, खड़ी बोली, (हिन्दुस्तानी), बाँगरू और राजस्थानी सम्मिलित हैं। २—पूर्वी हिन्दी—जिसमें अवधी, बघेली, छत्तीस-गढ़ी, बिहारी, बोलियाँ, (भोजपुरी, मैथिली और मगही सम्मिलित हैं) ३—पहाड़ी प्रदेश की बोलियाँ—जिसमें पश्चिमी मध्य और नेपाली की बोलियाँ सम्मिलित हैं।

कुछ भाषा-वैज्ञानिकों का मत है कि राजस्थानी और बिहारी भाषाओं को हिन्दी के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। वे उसे पृथक् भाषाएँ मानते हैं (मैथिली और राजस्थानी में प्राचीन पुष्ट साहित्य भी विद्यमान है) फिर भी इन भाषा-भाषियों ने अपनी साहित्य-भाषा के रूप में हिन्दी को प्रायः स्वीकार कर लिया है। यों साहित्य-परम्परा रहित जनपदीय भाषाओं में भी गीत, कहानी, उपन्यास आदि लिखने का कतिपय लेखकों में उत्साह फैल रहा है पर उस उत्साह को केवल शौकिया ही कहा जाना चाहिये। वस्तुतः खड़ी बोली ही उनके साहित्य की भाषा बन गई है। अतः अब इन भाषाओं को हिन्दी के अन्तर्गत ही मानने की परिपाटी चल पड़ी है। हरिश्चन्द्र कालीन पूर्वी हिन्दी-क्षेत्र के लेखक राधाचरण गोस्वामी ने 'हिन्दोस्तान' के ११ नवम्बर १८२७ ईस्वी के अंक में लिखा था, "हमारी वर्त-मान हिन्दी जो है वह ब्रजभाषा, कान्यकुब्जी, शौरसेनी, बैसवाड़ी, बिहारी, अन्त-र्वेदी, बुन्देलखण्डी, आदि कई भाषाओं के शब्दों से बनी हुई है। उनका यह मत तथ्यहीन नहीं है। यह उसकी व्यापकता का ही निर्देशक है।"

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग

संस्कृत की 'स्' ध्वनि फारसी में 'ह्' उच्चरित होती है। राजस्थानी की कतिपय उपबोलियों में भी 'स्' ध्वनि 'ह्' ध्वनि हो जाती है। मध्यप्रदेश के रतलाम, झाबुआ आदि पश्चिमी जिलों में 'सो रुपया' के स्थान पर 'हो रुपया' आज भी बोला-सुना जाता है, 'सगा भाई' को 'हगा भाई' निस्संकोच कहा जाता है। अतः

प्रारम्भ में फारसी भाषियों ने भारत की सिन्धु नदी के देश को हिन्द और हिन्द के वासियों को हिन्दी तथा उनकी भाषा को हिन्दुई कहना प्रारम्भ किया होगा। बाद में, धर्मान्तरित मुसलमान हिन्दी और मुसलमानेतर हिन्दू कहलाने लगे।[1] आधुनिक युग में भारतवासी चाहे जिस प्रदेश या धर्म का हो अपने को हिन्दी कहलाने में कोई झिझक अनुभव नहीं करता। 'इकबाल' कवि की "हिन्दी है हम वतन हैं हिन्दोस्ताँ हमारा" पंक्ति बड़े उत्साह के साथ सभी जातियों द्वारा गाई जाती है। इसे हिन्दुई और हिन्दवी भी कहा गया है। यद्यपि भाषा विज्ञानियों ने इसके अन्तर्गत राजस्थानी, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली, बुन्देली आदि भाषाओं का समावेश कर लिया है परन्तु प्रारम्भ में यह नाम खुसरो के समय से उस भाषा-रूप को दिया गया था जिसे खड़ी बोली, हिन्दुस्तानी या राहुल के शब्दों में 'कौरवी' कहा जाता है। संवत् १७१२ में दाराशिकोह ने नृसिंह तापनीय उपनिषद् का फारसी में अनुवाद किया था। उसका संवत् १७७६ में जनप्रह्लाद ने हिन्दवी भाषा में उल्था करते हुए लिखा, "श्री गुरु ने आज्ञाकारी जुपाठ या उपनिषदों का जामिनी भाषा सो नषिध है वाकी आज्ञा सों जनप्रह्लाद ने पुनः हिन्दवी भाषा मो लिपा" उर्दू भी इसी बोली से गठित की गई है।[2] भारतीय संविधान में खड़ी बोली—रूप को ही हिन्दी के नाम से अभिहित किया गया है और यह पश्चिमी हिन्दी की एक उपबोली है।

पश्चिमी हिन्दी की उत्पत्ति नागर अपभ्रंश से मानी जाती है, जो शौरसेनी और महाराष्ट्री का मिश्र रूप है। (नागरन्तु महाराष्ट्री शौरसेन्योस्तुसंकरात्)

खड़ी बोली पश्चिमी हिन्दी की उपबोली मानी जाती है परन्तु यह किस लौकिक अपभ्रंश से उत्पन्न हुई है, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। सामान्य रूप से इसे शौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न बोली माना जाता है जिसका आधार कुरुक्षेत्र की जन प्रचलित भाषा है। इसका क्षेत्र पश्चिमी रोहेल-खण्ड, उत्तर गंगा का दोआब और अम्बाला जिले का पूर्वीय भाग है।

इस (खड़ी) बोली की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्न मत प्रचलित हैं—

१—"शौरसेनी अर्धमागधी, पंजाबी और पैशाची के गड़बड़ अंश से उत्पन्न

---

१. जो भी जीवित हिन्दू बादशाह के हाथों में पड़ा उसे हाथी के पाँव के नीचे कुचल दिया गया क्योंकि मुसलमान जो हिन्दी थे उनकी जिन्दगी बख्श दी गई—अमीरखुसरो, देखिए ईलिएट की हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ५३९।

२. शौरसेनी अपभ्रंश से विकास पाने वाली अन्य भाषाओं में उर्दू भी है। उर्दू के ही रूप रेखता या दक्खिनी हिन्दी हैं, जिसमें खड़ी बोली के ढांचे में अरबी फारसी तथा प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का छिड़काव है।

भाषा को खड़ी बोली कहते हैं।"[१]—बदरीनाथ भट्ट।

२—"जो भाषा आजकल 'खड़ी बोली' नाम से कही जाती है वह हमारी समझ में उर्दू का ही रूपान्तर है। आरम्भ में तो वह उर्दू भाषा में 'भाखा' के प्रचलित शब्द रखकर बनाई गई और फिर शनैः-शनैः उसमें संस्कृत के शब्द मिलाये जाने लगे।"[२]—जगन्नाथदास रत्नाकर।

३—"उर्दू रचना में फारसी, अरबी, तत्सम या तद्भवों को निकालकर संस्कृत या हिन्दी के तत्सम् और तद्भव रखने से हिन्दी बना ली गई—हिन्दी गद्य भाषा लल्लूजी लाल के समय से आरम्भ होती है। विदेशी मुसलमानों ने आगरे, दिल्ली, सहारनपुर, मेरठ की खड़ी बोली को खड़ी बताकर लश्कर और समाज के लिए उपयोगी बनाया।" चन्द्रधर शर्मा गुलेरी।

४—वर्तमान हिन्दी भाषा की जन्मभूमि दिल्ली है। वहीं ब्रजभाषा से यह उत्पन्न हुई।"[३]—बालमुकुन्द गुप्त।

५—"फारसी में ही कुछ ब्रज और बांगरू की टेक लगाकर बोली को खड़ा कर दिया गया और उसका नाम पड़ गया खड़ी बोली।"—लाला भगवानदीन।

६—"यह हिन्दी भाषा का उत्पत्ति-काल था जिसे अंग्रेजों ने आविष्कृत किया और गिलक्राइस्ट के निर्देशन में प्रेमसागर के रचयिता लल्लूजी लाल ने पहली बार साहित्य-गद्य के रूप में व्यवहृत किया।" स्थानीय बोली के रूप में हिन्दुस्तानी पश्चिमी हिन्दी की विभाषा है जो धीरे-धीरे पंजाबी में अन्तर्मुक्त होती जाती है। इसका व्याकरण तो पश्चिमी हिन्दी का है किन्तु इसमें प्रत्यय पंजाबी के हैं। पश्चिमी हिन्दी का वास्तविक संबंध कारक चिन्ह 'का' है जिसका पंजाबी रूप 'दा' है। हिन्दुस्तानी ने का से 'क' और पंजाबी के दा से 'आ' ग्रहण करके 'का' अनुसर्ग का निर्माण कर लिया। इसी प्रकार इसके विशेष रूप तथा कारक-पदों का भी निर्माण हुआ है।[४]—ग्रियर्सन।

७—"यह सामान्य बोली प्राचीन राजधानी दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्र में उत्पन्न हुई। बोलचाल की वही हिन्दी भाषा के नए रूप का आधार बनी, जिसमें संज्ञा और क्रियाओं का रूप-परिवर्तन हिन्दी का था और अत्यन्त प्रचलित शब्द भी रखे गए किन्तु फारसी-अरबी, यहाँ तक कि तुर्की शब्द भी इस तरह से

---

१. खड़ी बोली का आन्दोलन : शितिकंठ मिश्र, पृष्ठ २७
२. खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना : आशा गुप्त, पृष्ठ ४
३. बालमुकुन्द गुप्त, वही, पृष्ठ ४
४. ग्रियर्सन—'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दोस्तानी' (भूमिका में)

सन्निविष्ट हो गए जैसे अंग्रेजी में लेटिन और ग्रीक शब्द ।[1]

८—डॉ० सुनीतिकुमार का कथन है कि "पश्चिमी हिन्दी की आकारान्त बोलियों से एक प्रचलित सार्वदेशिक भाषा का जन्म हुआ जिस पर तेरहवीं शती के पश्चात् आद्य पंजाबी का भी थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ा ।"

अब उपर्युक्त मतों की समीक्षा की जाती है—

१—बदरीनाथ भट्ट खड़ी बोली की उत्पत्ति शौरसेनी, अर्ध मागधी और पंजाबी तथा पैशाची के मिश्रण से मानते हैं। परन्तु उन्होंने शौरसेनी के किस रूप से उसकी उत्पति मानी है, यह स्पष्ट नहीं किया। भाषा विज्ञानियों की मान्यता है कि खड़ी बोली पश्चिमी हिन्दी की एक विभाषा है और पश्चिमी हिन्दी शौरसेनी अपभ्रंश का ही विकसित रूप है। अतः भट्ट जी का अर्धमागधी से, जिससे अवधी का उदय माना जाता है, खड़ी बोली का सम्बन्ध जोड़ना भी असंगत प्रतीत होता है। अवधी या पूर्वी हिन्दी तथा खड़ी बोली का व्याकरणिक रूप भिन्न है। हाँ, पंजाबी और पैशाची से उसका थोड़ा-बहुत सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। पंजाबी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मान्यता है कि वह आरम्भ में टक्की और कैकयी के आधार पर शौरसेनी और पैशाची अपभ्रंश के संयोग से हुई। खड़ी बोली भी शौरसेनी अपभ्रंश से अलग मानी जाती है। अतः पंजाबी और खड़ी बोली में बहुत कुछ समानता का परिलक्षित होना स्वाभाविक है।

२—३ और ४ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और जगन्नाथदास 'रत्नाकर' तथा डॉ० हक खड़ी बोली की उत्पत्ति उर्दू से मानते हैं पर भाषा-विज्ञानियों तथा उर्दू साहित्यकारों का मत इनसे भिन्न है। वे उर्दू को खड़ी बोली के ढाँचे पर आधारित अरबी फारसी शब्द-प्रचुर भाषा मानते हैं। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी कहते हैं—

"हिन्दुस्तानी के उर्दू रूप का १७वीं शताब्दी के पूर्व कोई अस्तित्व ही नहीं था।"[2] उर्दू साहित्य का इतिहास" के लेखक रामबाबू सक्सेना लिखते हैं, "उर्दू भाषा उस हिन्दी या 'भाखा' की शाखा है जो सदियों तक दिल्ली और मेरठ के आस-पास बोली जाती थी और उसका सीधा सम्बन्ध शौरसेनी प्राकृत से था।" वह भाषा जिसे पश्चिमी हिन्दी कहना उचित होगा, उर्दू भाषा की जननी समझी जा सकती है।[3] सक्सेना का 'भाखा' से तात्पर्य प्रचलित बोलचाल की खड़ी बोली से है पर उसका सीधा सम्बन्ध शूरसेनी प्राकृत से नहीं माना जाता। आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास विभिन्न अपभ्रंशों से माना जाता है। संभवतः प्राकृत का व्यापक अर्थ में उन्होंने प्रयोग किया है।

---

१. पंजाब की जनगणना रिपोर्ट (सन् १८८१) खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना में उद्धृत, पृष्ठ ६
२. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी
३. वही, पृष्ठ १

४—बालमुकुन्द गुप्त उसकी उत्पत्ति ब्रजभाषा से मानते हैं, जो भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करने से ठीक प्रतीत नहीं होता। ब्रजभाषा और खड़ी बोली में सामान्यतः मुख्य अन्तर क्रमशः संज्ञा तथा विशेषण शब्दों का ओकारान्त तथा आकारान्त रूप हैं। यद्यपि दोनों का उदय पश्चिमी हिन्दी से हुआ है तो भी खड़ी बोली का उदय ११वीं सदी में उत्तरी मध्यदेश से तथा ब्रज का मध्यदेश की बोली से विकास हुआ। चन्द्रवली पांडे का कथन है कि "इन भाषाओं के विकास का जो मैंने अध्ययन किया है उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हिन्दुस्तानी खड़ी ही वह भाषा थी जिसका साहित्यिक भाषा के रूप में सबसे पहले विकास हुआ। दूसरी तरफ १६वीं सदी के पहले की ब्रजभाषा का इतिहास बहुत ही शंकास्पद है।"

५—लाला भगवानदीन फारसी से खड़ी बोली की उत्पत्ति का संकेत करते हैं। वे उसमें ब्रज और बांगरू का भी आधार मानते हैं। उनकी स्थापना का कोई आधार नहीं। खड़ी बोली में फारसी शब्दावली की प्रचुरता उसकी एक नई शैली उर्दू की विशेषता मात्र है। बांगरू और खड़ी बोली के क्षेत्रों की परस्पर निकटता के कारण दोनों एक दूसरे से प्रभावित हो सकती हैं।

६—ग्रियर्सन ने खड़ी बोली को अंग्रेजों द्वारा गढ़ी हुई एक भाषा बतलाने का प्रयत्न किया है जो खड़ी बोली साहित्य के प्राचीनतम रूपों के विद्यमान रहते हुए असंगत सिद्ध होता है। यह ठीक है कि लल्लूजी लाल से पूर्व किसी ने हिन्दवी या हिन्दुस्तानी को खड़ी बोली नहीं कहा पर उसका रूप साहित्य में उनसे पूर्व प्रचलित था। मराठी संतों ने तेरहवीं शताब्दी के लगभग उसका अपने पदों में प्रयोग किया है।[1] संवत् १७७६ के एक गद्य का नमूना दर्शनीय है जो एक पंजाबी लेखक द्वारा लिखा गया है।

"यह उपनिषत नृसिंह तापनी जु सिद्धान्त की अवध है अरु। सर्व जुगता ज्ञान अरु जग्यासी की या मोषचत है अरु सपूरन उपनिषतों का रहस्य है या मो अरू अथर्वन वेद हूँ रहस्य है। तीनों ही वेदों का अरुगुह्य भेद आतमा का है।"[2] अन्तिम दो मत ७ और ८ भाषा के व्यावहारिकरूप के अध्ययन के परिणाम प्रतीत होते हैं। भाषाओं का विकास निरन्तर होता रहता है पर जब देश में कोई ऐतिहासिक या धार्मिक परिस्थिति प्रबल हो उठती है तब विकास के चरण तेजी से बढ़ने लगते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग पश्चिमी सीमाप्रांत से मुसलमानों के जो आक्रमण भारत पर हुए थे वे ऐसे नहीं थे जो रूप स्थायी रहे हों। उन्होंने भारत में साम्राज्य स्थापना की दृष्टि से आक्रमण किये और पंजाब के उत्तर पश्चिमी भाग में वे सर्व-

---

१. "हाट चौहाटा पड़ रहूं हो मांग पंच घर भिच्छा।" माहदाहसा (हिन्दी को मराठी संतों की देन, पृष्ठ ८५)

२. साहित्य दर्शन (केसरीनारायण शुक्ल) पृ० १३६

प्रथम बसे। वे फारसी भाषा से परिचित थे जो आर्यभाषा—परिवार की एक भाषा है। भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा में क्षेत्र तथा पंजाब में उस समय निश्चय ही आर्य भाषा का कोई रूप बोला जाता रहा होगा। मुसलमानों को दैनिक व्यवहारार्थ स्थानीय बोली को ग्रहण करना आवश्यक हो गया था। अतः उन्होंने उसे सीखते समय स्वभावतः उससे अपनी भाषा फारसी को थोड़ा मिश्रण किया होगा। तत्कालीन भाषा के उदाहरण को देखने से ज्ञात होता है कि पंजाब में जो भाषा मुसलमानों के आगमन के समय प्रचलित थी वह खड़ी बोली के रूप में विकसित हो रही थी।

कुरुप्रदेश की खड़ी बोली जब मुसलमानों के अभियान के साथ दिल्ली पहुँची तो उसमें अरबी-फारसी के शब्दों का छिड़काव प्रारम्भ हुआ। इसलिए इस मिली-जुली बोली को प्रारम्भ में रेखता भी कहा गया और जब मुहम्मद तुगलक की सनक के कारण समस्त दिल्ली ही भागती-दौड़ती दौलताबाद पहुँची तब दिल्ली की यह रेखता[1] भी दक्षिण में पहुँची और दखनी[2] कहलाई। इसे ही बोलचाल में हिन्दुस्तानी और मूर्स भी कहा जाता था।[3]

ग्रियर्सन ने खड़ी बोली के स्थान पर हिन्दुस्तानी का प्रयोग किया है। चटर्जी ने दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। पर हिन्दुओं को प्रारम्भ में अपनी भाषा का खिचड़ी रूप स्वीकार नहीं हुआ। तभी वे उसे म्लेच्छ भाषा कहकर उसका तिरस्कार करने लगे। केदार पंडित के 'वृत्तरत्नाकर' में म्लेच्छ भाषा-रूप का उदाहरण संस्कृत मिश्रित पद में मिलता है—

हरनयन समुत्थज्वाल वह्निज्जलाया।
रतिनयन जलोघैः खाक बाकी बहाया।
तदपि दहतियेतो मामकं क्या करोगी ?
मदन शिरसि भूयः क्या बला आगि लागी।

---

१. रेखता मिश्रित उर्दू का वह रूप है जो पुरुषों द्वारा कविता में व्यवहृत होता है। यह नाम रचना की उस शैली से ग्रहण किया गया है जिसमें फारसी शब्द बिखरे रूप में प्रकट होते हैं। जब उस विशेष बोली में कविता की रचना की जाती है जो स्त्रियों में प्रचलित है तथा जिसका शब्द समूह भी उन्हीं का होता है जो उसे रेखती नाम से अभिहित किया जाता है। (ग्रियर्सन का भारत का भाषा-सर्वेक्षण का हिन्दी अनुवाद, पृ० ३०५)

२. दखिनी, हिन्दुस्तानी का वह रूप है जिसका प्रयोग दक्षिण में रहने वाले मुसलमान करते हैं। (वही, पृष्ठ ३०६)

३. देखिए हॉबसन जॉबसन (१८०३ ई० संस्करण, पृ० ४१७)।

प्राकृत या बोलचाल की भाषा को भाषा या 'भाखा' ही कहा जाता रहा है।[1] वाद में वह ब्रज का भी पर्याय बन गया। पर उर्दूतां पंडिताऊ (संस्कृत मिश्रित) हिन्दी को भाखा ही कहते रहे।

खड़ी बोली नामकरण—

हिन्दी के हिन्दुस्तानी रूप का खड़ी बोली नामकरण कब से और कैसे हुआ, इसका भी एक इतिहास है। कलकत्ते के फोर्ट विलियम कॉलेज में, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने विलायत से आनेवाले कर्मचारियों को देश-भाषा से परिचित कराने की दृष्टि से सन् १८०० ई० में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। जॉन ग्रिलक्राइस्ट के नेतृत्व में लल्लूजी लाल, सदासुखलाल, सदलमिश्र आदि व्यक्तियों की नियुक्ति की गई। और उन्होंने लोक भाषा में पुस्तकें लिखना प्रारम्भ कर दिया। लल्लूजी लाल ने 'प्रेमसागर' में ग्रियर्सन की हिन्दुस्तानी भापा को सर्वप्रथम 'खड़ी बोली' के नाम से अभिहित किया। उसकी भूमिका में वे लिखते हैं—

"एक समै व्यासदेव कृत श्रीमत भागवत के दशम स्कन्ध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने दोहे-चौपाई में ब्रजभाषा में किया। पाठशाला के लिए महाराजाधिराज सकलगुण निधान, पुण्यवान, महाजान मारकुइसवलिजलि गवरनर जनरल प्रतापी के राज में श्रीयुत गुनगाहक गनियत सुखदायक जान गिल किरिस्त की आज्ञा से संवत १८६० में लल्लूजी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरेवाले ने जिसका सार ले यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह नाम 'प्रेमसागर' धरा" (प्रेमसागर-संस्करण १८०५ ई०)।

पंडित श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली को व्यवहृत करने का श्रेय लल्लूजी लाल को दिया है। वे लिखते हैं—

१—हिन्दी हमारी समझ में कालानुक्रम से तीन भागों में विभक्त हो सकती है।

२—प्रथम—प्राचीन। चन्द के समय से मलिक मुहम्मद जायसी तक अथवा कहिए पृथ्वीराज से हुमायूँ तक।

३—द्वितीय—मध्यकालीन या ब्रजभाषा (इसका सूरदास अथवा अकवर के समय से आरम्भ है और कविता में यह अभी तक जीवित है। यद्यपि हरिश्चन्द्र के साथ इसकी समाप्ति कही जा सकती है।

४—तृतीय—नवीन वा खड़ी हिन्दी—यह हिन्दी यद्यपि वोलचाल में न्यूनाधिक तब से व्यवहृत है जब से दिल्ली-आगरे में उर्दू बोली जाने लगी। परन्तु लेख

---

१. **"का भाखा का संस्किरत भाव चाहिए साँच"**
श्रा—भाखा निवद्ध करहु मैं सोई—तुलसीदास

के रूप में लल्लू जी लाल के प्रेमसागर ही में पहले देखने में आई। इसलिए तभी से इसका जन्म समझना चाहिए।[1]

"पूर्ण नागरी हिन्दी तथा फारसी-अरबीमय उर्दू दोनों के संस्कृत तथा देशज रूपों का व्याकरण लगभग एक ही है। यह व्याकरण करीब-करीब दिल्ली की उच्च श्रेणी द्वारा व्यवहृत भाषा का व्याकरण कहा जा सकता है। इस एक व्याकरण में एक ही प्रकार की धातुओं प्रत्ययों तथा शब्दों के एक ही प्रकार को प्रतिष्ठा भूमि बनाकर उर्दू तथा नागरी हिन्दी के भिन्न-भिन्न भवनों का निर्माण हुआ है। दोनों भाषाओं के समान रूप से निहित इस मूल भाषा को खड़ी बोली कहा गया है और हिन्दी-उर्दू खड़ी बोली समूह से पृथक् व्याकरण वाली प्रत्येक उत्तर भारतीय भाषा या वोली 'पड़ी बोली' कही जाती है।"[2]

तासी, केलॉग आदि विद्वानों ने भी इसका शुद्धबोली अर्थात् 'खड़ी बोली' के अर्थ में प्रयोग किया है। बुन्देलखड में इसे ठेठ, ठाड़ी या तुर्की कहते हैं। प्रतीत होता है, लल्लूजी लाल ने खड़ी बोली शब्द स्वयं नहीं गढ़ा, वह जनता में प्रचलित रहा है। पर वह 'खरी' (१) (२) के अर्थ में ही प्रचलित नहीं रहा क्योंकि खड़ी बोली का आन्दोलन करनेवाले अयोध्याप्रसाद खत्री ने उसके पाँच रूप स्वीकार किए हैं। वे लिखते हैं—

'खड़ी बोली' के मैंने पाँच भेद माने हैं, ठेठ हिन्दी, पण्डित जी की हिन्दी, मुंशीजी की हिन्दी, मौलवी साहिब की हिन्दी, और यूरेशियन हिन्दी।

१—ठेठ हिन्दी वह है कि जिसमें न विदेशी शब्द हों और न संस्कृत के कठिन। इसमें तद्भव और देशज शब्द अधिक रहते हैं।

२—पण्डित जी की हिन्दी में संस्कृत के बड़े-बड़े और कठिन शब्द रहते हैं, विदेशी शब्द प्राय: नहीं रहते हैं।

३—मुंशी जी की हिन्दी पण्डित जी और मौलवी साहब की हिन्दी के बीच की हिन्दी है और इसको यूरोपियन विद्वान हिन्दुस्तानी कहते हैं।

४—मौलवी साहब की हिन्दी फारसी-अरबी (कठिन तत्सम) संज्ञाओं से भरी रहती है। इसको मौलवी साहब उर्दू कहकर पुकारते हैं।

५—यूरेशियन हिन्दी में अंगरेजी के तत्सम संज्ञा शब्द आते हैं। मौलवी साहब फारसी और यूरोपियन अंगरेजी अक्षर पसंद करते हैं।

(खत्री स्मारक ग्रन्थ, पृष्ठ ११७)

डॉ० चटर्जी ने जो यह कहा है कि हिन्दी उर्दू खड़ी बोली समूह से पृथक् व्याकरण वाली प्रत्येक उत्तर भारतीय भाषा या बोली पड़ी बोली कही जाती है,

---

१. खत्री स्मारक ग्रन्थ (प्रथम संस्करण) पृ० २०२
२. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी (प्रथम संस्करण) पृ० १६५

उसका आधार क्या है ? उन्हें तो व्रज, अवधी, बुन्देली आदि कहा जाता है। पड़ी वोली कोई नहीं कहता। कुछ साहित्यकारों ने खड़ी वोली के विरोध में पड़ी वोली शब्द का उल्लेख अवश्य किया है।

लल्लूजी लाल के पश्चात् उनके सम-सामयिक सहयोगी सदलमिश्र ने भी 'खड़ी वोली' का प्रयोग किया है। वे लिखते हैं, "अव संवत् १८६० में नासिकेतोपाख्यान को कि जिसमें चन्द्रावली की कथा कही है, देववाणी से कोई-कोई समझ नहीं सकता, इसलिए खड़ी वोली में किया।" (चन्द्रावती अथवा नासिकेतोपाख्यान नागरी प्रचारणी सभा प्रकाशन, पृष्ठ १) जानगिलक्राइस्ट ने भी अपने 'भाखा मुंगियों' का अनुकरण कर हिन्दोस्तानी या हिन्दुई को 'खड़ी वोली' कहना स्वीकार कर लिया। अपनी 'हिन्द स्टोरी टेलर—भाग' ३ और 'दि ओरियंटल फेव्युलिस्ट' में उन्होंने इसी शब्द का प्रयोग किया है।

लल्लूजी लाल ने आगरे की हिन्दी वोली को खड़ी वोली नाम कैसे दिया, इसका स्पष्टीकरण नहीं हो पाया। क्या उन्होंने उसे खरी अर्थ में व्यवहृत किया है ? डॉ० श्यामसुन्दरदास, व्रजरत्नदास प्रभृति विद्वानों का अनुमान है कि संभवतः अरवी फारसी मिश्रित भाषा रेखता के, जिसका कि अर्थ गिरा पड़ा होता है, वजन पर विदेशी शब्द रहित भाषा को खड़ी वोली कहने की प्रेरणा लल्लूजी लाल को हुई हो। फेड़रिकपिनकॉट अयोध्याप्रसाद खत्री के 'खड़ी वोली का पद्य' की भूमिका में लिखते हैं खड़ी वोली—यह लल्लू जी लाल द्वारा निर्मित कोई नई भाषा नहीं है जैसा कि डॉ० ग्रियर्सन और स्वर्गीय डॉ० हक ने 'अंजुमने तरक्की-ए उर्दू (अप्रैल १९१६ में प्रतिपादित किया है कि "फोर्ट विलियम कालेज के मुंशियों ने —उनकी अखाल को शरमाए वैठे विठाए विला वजह और वगैर जरूरत यह शोगा छोड़ा। लल्लू जी लाल ने जो उर्दू के जवादां और उर्दू कितावों के मुंसिफ भी थे, इसकी नींव डाली। वह इस तरह की उर्दू की वाज़ कितावें लेकर उन्होंने उनमें से अरवी फारसी लफज चुन-चुनकर अलग निकाल दिए और उनकी जगह संस्कृत और हिन्दी के नामानूस लफ्ज जमा दिए, लीजिए हिन्दी वन गई।" कदाचित् मौलाना हक 'के' के 'हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर' से प्रभावित होकर ही उर्दू को खड़ी वोली की जननी मानने को विवश हुए हों। 'तासी' भी इसी मत के समर्थक हैं। यह भ्रान्ति उनका खड़ी वोली-क्षेत्र से व्यक्तिगत परिचय न होने के कारण ही हुई है। 'तासी' ने हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास लिखा और उन्होंने जव खड़ी वोली हिन्दी की जननी उर्दू कहा तो उनके कुछ परवर्ती लेखक उन्हीं का कथन दुहराते गये। वास्तव में ईसा की १७ वीं शताब्दी के पूर्व 'उर्दू' का कोई अस्तित्व ही नहीं था। पर खड़ी वोली हिन्दी के अस्तित्व के पुष्कल प्रमाण मिलते हैं। उर्दू तो पंजाव और दिल्ली के निकटवर्ती भूभाग में प्रचलित खड़ी वोली के व्याकरणिक सांचे अरवी-फारसी के छिड़काव से ढली है। इस तथ्य में अव कोई सन्देह ही नहीं

रह गया। खड़ी वोली रामपुर,मुरादावाद, विजनौर, मेरठ, सहारनपुर, मुजफ्फर-नगर, देहरादून के मैदानी भाग, अम्वाला, कलसिया और पटियाला के पूर्वी भाग के गाँवों में भी वोली जाती है। यह वात दूसरी है कि उसका ग्राम्य रूप नागर रूप से थोड़ा भिन्न है पर वह आज ही नहीं, मुसलमानों के आगमन से वर्षों पूर्व से उत्तर भारत की जीवित वोली रही है, वह लल्लूजी लाल द्वारा गढ़ी हुई भाषा नहीं है।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने इसके वोलने वालों की संख्या अपनी 'हिन्दी भाषा और लिपि' पुस्तक में ५३ लाख लिखी है। ये अंक किस जन-गणना-प्रतिवेदन के आधार पर हैं, निर्दिष्ट नहीं है। परन्तु पुस्तक पर प्रकाशन तिथि सन् १९४७ अंकित है। अतः उक्त आँकड़े इससे वहुत पूर्व के प्रतीत होते हैं। वढ़ती हुई जन-संख्या के हिसाव से इसमें कम से कम तिगुनी वृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। डॉ० टी० ग्रहमवेली ने अपने उर्दू-साहित्य के इतिहास में खड़ी वोली पर विचार करते हुए उसकी दो शाखाएँ वतलाई हैं—एक हिन्दी और दूसरी उर्दू। इसका उस्मानिया विश्वविद्यालय के उर्दू के प्रोफेसर (स्व०) अव्दुलहक ने प्रतिवाद करते हुए लिखा है कि (डा० वेली सा० ने) गजव किया और उसकी दो शाखाएँ हिन्दी और उर्दू वताई हैं। खड़ी वोली के माने हिन्दोस्तान में आमतौर पर गँवारी वोली के हैं। जिसे हिन्दोस्तान का वच्चा-वच्चा जानता है। वह न कोई खास ज़वान है और न ज़वान की कोई शाख। (उर्दू जुलाई १९६३, पृ० ५१०) वेली सा० ने प्रोफेसर हक को प्रत्युत्तर देते हुए लिखा है—"खड़ी शव्द का अर्थ है उठी और जव यह किसी भाषा के लिए पहले प्रयुक्त हुआ होगा तव उसका अर्थ प्रचलित रहा होगा। हम लोगों को यह अवश्य नहीं भूलना चाहिए कि आज कल हम लोग जिस वोली को खड़ी वोली के नाम से जानते हैं, उसके अतिरिक्त यह शव्द किसी अन्य भाषा के लिए कभी भी प्रयुक्त नहीं हुआ है। कामताप्रसाद-गुरु ने अपने हिन्दी व्याकरण में लिखा है कि वुन्देलखण्ड में खड़ी वोली को ठाठ वोली कहा जाता है। ठाठ का भी वस्तुतः खड़ा ही अर्थ होता है। डाक्टर वी०-एस० पंडित ने, जिनकी मातृभाषा मारवाड़ी है, मुझे वताया है कि मारवाड़ी में खड़ी वोली को ठाठ वोली कहा जाता है। यहाँ 'ठाठ' का अर्थ भी खड़ा होता है। इस प्रकार इस वोली के हमें तीन नाम मिलते हैं और प्रत्येक का अर्थ खड़ी भाषा होता है।" डा० 'वेली पुनः हक सा० को सम्वोधित कर कहते हैं, "उर्दू के सम्वन्ध में आपकी राय अवश्य आदरणीय है क्योंकि उर्दू आपकी मातृभाषा है तथा उर्दू के अध्ययन में आपने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है। उपयुक्त प्रश्न उर्दू का नहीं है, अपितु हिन्दी का है। तथा उसका निर्णय हिन्दी साहित्य के अध्ययन से ही होना चाहिए। उर्दू साहित्य में खड़ी वोली नाम का कुछ अर्थ नहीं होता क्योंकि वह किसी पुस्तक में प्रयुक्त नहीं है। उर्दू शव्दकोषों में भी यह शव्द कदाचित ही

मिले। 'फर्हेंग-इ आस फिद' में भी, जिसकी प्रशंसा उर्दू के विद्वान बड़ी श्रद्धा से करते हैं, यह नाम नहीं आया है। गँवारू बोली वाला अर्थ जिसके विषय में आपका कथन है कि हिन्दोस्तान का बच्चा-बच्चा जानता है, इतनी बड़ी 'नूर उल तुगत' के संग्रहकर्त्ता को भी नहीं मालूम है। इसके सम्बन्ध में जो कुछ भी कथन है वह यही है कि खड़ी बोली बोली है। गँवारू बोली वाला अर्थ अबुलमजीद के बृहत् उर्दूकोष 'जामइ-उल लुगात' में भी नहीं मिलता। इसमें खड़ी वोली का अर्थ' मर्दों की वोली वताया गया है। अब हम देखते हैं कि उर्दू के दो वड़े एवं आधुनिक कोषों के संग्रहकर्त्ताओं ने भी जो स्वयं हिन्दुस्तानी हैं, खड़ी बोली का वह अर्थ नहीं सुना जिसके सम्बन्ध में (आप कहते हैं) कि उसे हिन्दोस्तान का बच्चा-बच्चा जानता है। उपर्युक्त कोषों में गँवारू बोली के सम्बन्ध में कुछ नहीं मिलता।"[१]

खड़ी बोली का साहित्य में प्रयोग—यद्यपि खड़ी बोली का ग्यारहवीं शताब्दी का कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है जिससे उसके प्राचीन रूप को प्रमाणित किया जा सके परन्तु उसकी प्रवृत्तियों का आभास संतों के विकीर्ण पदों में मिल जाता है। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से अपभ्रंश जब क्रमशः साहित्य भाषा के पद से अपदस्थ होने लगी तो उसका स्थान ब्रजभाषा ने ले लिया और वही समस्त देश की संस्कारी साहित्य-भाषा बन गई जिसमें सभी भाषा-भाषी अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त रचना करने में अपने को गौरवान्वित अनुभव करते थे। इसी से खड़ी बोली में साहित्य रचना का काल बहुत बाद से प्रारम्भ होता है। साधु-संत अवश्य कभी-कभी खड़ी बोली का प्रयोग कर देते थे। 'नाथों' ने अपने धर्म-प्रचार के अभियान में महाराष्ट्र में खड़ी बोली मिश्रित पदों का प्रचार किया। उत्तर भारत में पजाब नाथों का गढ़ था। अतः वे जहाँ-जहाँ गए अपनी खड़ी बोली लेते गए। विक्रम संवत् ८३५ में जैनाचार्य उद्योतन सूरी रचित 'कुबलय माला कथा' में अठारह भाषाओं का उल्लेख है। उसमें सोलह प्रान्तों की भाषा के उदाहरण भी दिए गए हैं, जो नवीं शताब्दी की भारतीय प्रान्तीय भाषाओं के पारस्परिक अन्तर को बहुत अच्छे रूप में व्यवहृत करते हैं। यहाँ केवल मध्यप्रदेश की भाषा-रूप को प्रकट करने वाली पंक्तियाँ दी जाती हैं :—

"पय-णीति-संधि विग्गह पडुए बहुजंपि रे य पयतीए"
"तेरे मेरे आउ, त्ति जंपिरे मज्झदेसे च।"[२]

हम पहले कह आए हैं कि खड़ी बोली का क्षेत्र पंचनद की भूमि है। वहीं उसे सर्वप्रथम साहित्य में प्रविष्ट होने का अवसर मिला। 'शकरगंज' की रचनाओं में उसका एक रूप मिला है :—

---

१. **नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १७, अंक १, पृ० १०८**
२. **पूरे पद्यों के लिए देखिए 'सम्मेलन पत्रिका' भाग ४६, संख्या ४, पृ० ६४**

"जली याद की करना हर घड़ी, यक तिल हुजूर सों टलना नहीं।"
"उठ बैठे में दिल सों याद करना गवाहदार को छोड़ के चलना नई।"
(१२३०-१३२२ वि०)[१]

"सचाई यह है कि हिन्दी खड़ी बोली—के जो प्राचीन ग्रंथ इस समय उपलब्ध हैं, वे विदेशियों की कृतियाँ हैं। इस बात को स्वीकार करने में कोई लज्जा की बात नहीं, हमारी भारतीय बोली हिन्दी को आए हुए विदेशियों ने साहित्य का माध्यम बनाया।"[२]

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में शेख अबूकलंदर का, जो पानीपत के निवासी थे, निम्न दोहा अत्यन्त प्रसिद्ध है—

सजन सकारे जायेंगे और नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन कर भोर कभी न होय॥[३]

लल्लूजी लाल से पूर्व खड़ी बोली गद्य की रचना पंजाब में हो चुकी थी। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। साधु गुलाब सिंह का जन्म ईसा की अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। इनका गद्य प्रेमसागर के गद्य की अपेक्षा अधिक पुष्ट है। नमूना इस प्रकार है—

"श्री राम नाम में जो कुतर्क करते हैं सो नरक जायेंगे। श्री राम नाम अमृत को धाम है। जौन मूरख निन्दा करते हैं सो महापापी हैं सोई राखस महानीच हैं।"[४] साहित्य में ब्रजभाषा का प्राधान्य रहा है और उसमें प्रबन्ध काव्यों की सृष्टि हुई है पर खड़ी बोली में स्फुट पद और गद्य भी लिखे गये हैं।

अतः लल्लूजी लाल को खड़ी बोली का निर्माता मानना भ्रान्तिपूर्ण है। मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि हिन्दी क्षेत्रों में खड़ी बोली को ठाड़ बोली कहा जाता है। सम्भवतः लल्लूजी लाल को ठाड़ के पर्याय 'खड़ी' को बोली के साथ जोड़ने की सम्भवतः प्रथम प्रेरणा हुई हो। उसमें उनके पूर्व यदाकदा साहित्य-रचनाएँ होती रही हैं। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शती के पूर्वार्ध से खड़ी बोली साहित्य में ससम्मान अप्रतिहत गति से व्यवहृत होने लगी है।

---

१. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास (बाली) पृ० ८८
२. वही
३. पंजाब का हिन्दी साहित्य (सत्यपाल गुप्त) पृ० ४७
४. वही, पृ० ७२

हिन्दी का भावी रूप

यह पूर्व अध्याय में कहा जा चुका है कि वैदिक संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भापा-क्रम से हिन्दी का जन्म मध्यदेश में हुआ है। भापा की प्रवृत्तियों के अध्येताओं के अनुसार मध्यदेश में जन्म लेने वाली हिन्दी की सीमा पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अंवाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, तथा दक्षिण-पूर्व में रायपुर से आगे रायगढ़-सरगुजा आदि जिलों और दक्षिण पश्चिम में खंडवा जिले (जो अव पश्चिमी निमाड़ कहलाता है) की वुरहानपुर तहसील की भूमि का स्पर्श करती है। इसमें पश्चिमी हिन्दी की उपभापाएँ पश्चिमी हिन्दी, (जिसके अन्तर्गत खड़ी वोली, वाँगरू, व्रज, कन्नौजी और वुन्देली का समावेश है) पूर्वी हिन्दी, जिसमें अवधी वुन्देली और छत्तीसगढ़ी सम्मिलित हैं, विहारी (जिसमें भोजपुरी, मैथिली और मगही सम्मिलित हैं) राजस्थानी तथा पहाड़ी वोलियाँ समाविप्ट हैं। यद्यपि कुछ भापा विज्ञानी राजस्थानी और विहारी-वोलियों को हिन्दी के अन्तर्गत मानने को तैयार नहीं हैं परन्तु इन क्षेत्रों के निवासी घर में क्षेत्रीय भापा का भले ही प्रयोग करते हों पर शिक्षा, साहित्य और सामान्य व्यवहार में खड़ी वोली हिन्दी को ही अपनाये हुए हैं। उन्होंने राष्ट्रीय एकता की भावना से इस वोली का मातृभाषा के समान ही सम्मान करना प्रारम्भ कर दिया है। यह (खड़ी वोली) हिन्दी-प्रान्तों के अतिरिक्त भारत के अनेक आर्य-भापी प्रान्तों के नगरों में क्षेत्रीय भापा के साथ-साथ सह-भापा के रूप में भी प्रचलित है। द्रविड़ भाषी क्षेत्रों में भी धीरे-धीरे इसका प्रवेश हो रहा है। प्रश्न यह है कि भविप्य में जव हिन्दी सारे देश में प्रचलित हो जाएगी तव उसका व्यावहारिक रूप क्या होगा? भापा, देश कालानुसार विभिन्न जातियों और भापाओं के सम्पर्क में आने के कारण शव्दों का आदान-प्रदान करती रहती है। पर जिस तरह एक वड़ी नदी अपने उद्‌गम स्थान से निकलकर अपने साथ अनेक छोटी-मोटी नदियों का पानी ग्रहण करते रहने पर भी अन्त तक अपना अस्तित्व वनाये रखती है, उसी तरह मुख्य भापा भी अपने में अन्य भापाओं के शव्दों, वाक्यांशों आदि को लेने के वाद भी अपनी मूल-प्रवृत्ति नहीं खोती। विश्व भापाओं

का इतिहास यही बताता है। अंग्रेजी के अंतरराष्ट्रीय भाषा बनने का रहस्य यह है कि वह संसार के जिस क्षेत्र में जाती है, वहाँ के शब्दों को ग्रहण कर लेती है और इस तरह अपने सामर्थ्य को बढ़ाती जाती है। कुछ हिन्दी विद्वानों का मत है कि हमें हिन्दी के वे ही अहिन्दी शब्द लेने चाहिए जिनके समानार्थी शब्द उसमें न हों, हम इस मत से सहमत नहीं हैं।

आज हिन्दी सारे भारतवर्ष की भाषा बन गई है, वह जिस प्रान्त में जायेगी वहाँ के शब्दों को बराबर ग्रहण करती रहेगी। थोड़े समय तक तो अहिन्दी शब्द हमें खटकते रहेंगे पर जब उनका अधिकाधिक प्रयोग होने लगेगा तब वे स्वाभाविक जान पड़ेंगे। मराठी के चालू, बाजू, घोटाला, गड़बड़झाला, जैसे शब्द अब कानों में नहीं चुभते। स्व० पराड़कर, लक्ष्मणनारायण गर्दे आदि मराठी भाषी लेखकों ने ऐसे कई शब्द हिन्दी में खपा दिए हैं। मध्यप्रदेश के बहुत से भागों में वेतन के लिए, पगार, किस्त के लिए हफ्ता, डाक के लिए टपाल, शब्द मराठी एवं गुजराती होते हुए भी सर्वसाधारण में प्रचलित हो रहे हैं। बैलगाड़ी के लिए बंडी शब्द तेलुगु से दक्षिणपूर्वी मध्यप्रदेश में संचरित हो गया है। बड़ा (खाने का) संभवतः द्रविड़ भाषाओं से आर्य भाषाओं में आया है जो कई हिन्दी प्रान्तों में प्रचलित है। समर्थ लेखक जब अप्रचलित शब्दों को ग्रहण करते हैं, तब ये टकसाली बन जाते हैं और सर्वसाधारण में प्रचलित शब्दों की अवहेलना समर्थ लेखक बहुत काल तक कर भी नहीं सकते क्योंकि साहित्यकार, जीवन्त भाषा की ओर सहज आकृष्ट होता है। भाषा का कोई खास रूप पर लादा नहीं जा सकता, जनता उसे अपने आप बनाती रहती है। भाषा में शब्द और मुहावरे समय-समय पर एक ही प्रान्त और विभिन्न प्रान्तों में अपना अर्थ बदलते रहते हैं। अनेक संस्कृत शब्द यद्यपि हिन्दी और हिन्दीतर भाषाओं में प्रचलित हैं.तो भी वे सर्वत्र संस्कृत कोशों के अर्थ द्योतक नहीं है।

उदाहरणार्थ, संस्कृत के उपन्यास शब्द को ही लीजिए—वह तेलुगु में भाषण के अर्थ में और हिन्दी में नॉवेल या दीर्घ कथा के अर्थ में प्रचलित हैं। संस्कृत का शिक्षा मराठी में दण्ड (सजा) और हिन्दी में उपदेश, एजूकेशन के अर्थ में गृहीत है। चेष्टा मराठी में मजाक या उपहास का अर्थ देता है पर हिन्दी में प्रयत्न का। इसी प्रकार अनेक संस्कृत शब्द विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थो में प्रचार पा रहे हैं। वाक्यांश और मुहावरों का भी यही स्वभाव दिखलाई देता है। उदाहरणार्थ, जबलपुर से डाकगाड़ी छूटती है और इलाहाबाद और बनारस से खुलती है। मेरे केरली मित्र मुझे लिखते हैं—'आशा है, आप ससुख होंगे'। पर मैं लिखता हूँ, "आशा है, आप सानन्द हैं।" एक ओर केरल के ही हिन्दी-अध्यापक लिखते हैं, "वह लड़का परीक्षा हार गया।" पर मैं लिखता हूँ, "लड़का परीक्षा में असफल हो गया या फेल हो गया।" कोश जीवित भाषाओं के शब्दों या मुहावरों

के अर्थ को वहुत अधिक समय तक एक ही अर्थ में वाँध नहीं सकते। वे आज़ाद तवियत के होते हैं, देश-विदेश की यात्रा करते हैं। विभिन्न स्तर के नर-नारियों के सम्पर्क में आते हैं और नये-नये अर्थों को उनसे लेते देते रहते हैं। व्याकरणकार कभी भी भापा के रूप को स्थिर नहीं कर पाये। जव-जव उन्होंने यह प्रयत्न किया है भाषा की गति कुंठित हुई है और वह मृतप्राय वन गई है। पाणिनि, कात्यायन, और पंतजलि वर्तमान भाषा के शव्द रूपों को साधु या असाधु घोपित नहीं कर सकते। जिस युग में भाषा के प्रचलित रूपों को उन्होंने शास्त्रीय मान्यता प्रदान की थी वह युग अव नहीं रहा, वह भापा अव नहीं रही। अव तो उसका दूसरा ही रूप जिह्वा पर नाचने लगा है। अतः आज की भापा की प्रवृत्तियों को परखने के लिए हमें सदियों पुरानी धुँधली दृष्टि नहीं, आज की तेज दृष्टि चाहिए। राष्ट्रीय शव्द में ई ह्रस्व है या दीर्घ। वह संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है या अशुद्ध, इस विवाद में पड़ने की हिन्दी भाषी को आवश्यकता नहीं है। वह तो वहु प्रचलित रूप व्यवहार में लायगा और उसी को शुद्ध मानेगा। व्याकरण भापा का अनुकरण करती है। भापा व्याकरण का नहीं। मराठी भापा में असंख्य अरवी, फारसी, और अन्य विदेशी भापाओं के शव्दों का समावेश हो गया है। उन सवको मराठी ने अपनी प्रकृति के अनुसार तोड़-मरोड़कर शुद्ध कर लिया है। मराठी भापा का विद्वान तवियत नहीं, तव्यत, वरावर नहीं वरोवर, मजहव नहीं महजव, सिवा नहीं शिवाय, फिक्र नहीं फिकीर, निर्द्वन्द्व भाव से कहेगा। यदि आप इनके तत्सम रूपों का प्रयोग करेंगे तो मराठी से अनभिज्ञ समझे जायेंगे। भारतीय भापाओं में हिन्दी विद्वानों का तत्समता की ओर अधिक रुझान है, वे हर भाषा के उधार लिए हुए शव्दों को तत्समरूप में ग्रहण करना चाहते हैं। पर वहुजन इस प्रवृत्ति का पोपक नहीं है।

खड़ी वोली हिन्दी देश की व्यवहार-भापा वनती जा रही है। इसके तीन रूप दिखलाई देते हैं (१) शिप्ट या नागर रूप, (२) वाज़ारू रूप और (३) ग्राम रूप। शिप्ट रूप के भी भेद हैं जो भविप्य में अधिक स्पप्ट दृप्टिगोचर होंगे। उसका एक रूप तो वह है जो राज-काज में व्यवहृत होता है और होगा। उसकी भापा निश्चय ही संस्कृत प्रचुर होती है और होगी क्योंकि उत्तर की भापाएँ जो आर्य भाषाएँ कहलाती हैं संस्कृत के ही विकासक्रम का परिणाम हैं। और सुदूर दक्षिण की भापाएँ, यद्यपि आर्य या संस्कृत भापा परिवार की नहीं मानी जाती तो भी तमिल को छोड़कर, संस्कृत शव्दों को प्रचुरता से अपनाए हुए हैं। यह भी जान लेना चाहिए कि तमिल भी संस्कृत शव्दों को प्रचुरता से अपनाए हुए है। यह भी जान लेना चाहिए कि तमिल भी संस्कृत शव्दों से सर्वथा अछूती नहीं है। ऐसी दशा में राजभापा का संस्कृतनिप्ठ हिन्दी रूप समस्त भारत भापियों को वोधगम्य होगा और वही राजव्यवहार की भापा हो सकती है।

शिष्ट भाषा का दूसरा रूप वह होगा जो आज साहित्य में प्रयुक्त हो रहा है। उसके शास्त्रीय ग्रंथ तो संस्कृतनिष्ठ होंगे परन्तु ललितवाङ्मय की भाषा का रूप मिश्रित होगा। क्योंकि जब उसमें विभिन्न भाषा-भाषी लिखना प्रारम्भ करेंगे तो स्वभावतः वे अपनी मातृभाषा के शब्दों और मुहावरों को जाने अनजाने प्रयुक्त किये बिना नहीं रहेंगे। समर्थ लेखकों की रचनाओं के भाषा-प्रयोग धीरे-धीरे मान्य होते जायेंगे। जैसा कि अब तक होता आया है भविष्य में यह भी सम्भव है कि संस्कृत की पांचाली, वैदर्भी, गौड़ी आदि शैलियों के समान हिन्दी की भी पंजाबी हिन्दीं, बंगाली हिन्दी, मद्रासी हिन्दी, आन्ध्र हिन्दी, मराठी हिन्दी, केरली हिन्दी आदि शैलियाँ प्रचलित हो जाएँ। कई अहिन्दी भाषाविदों ने मुझसे कहा है कि राष्ट्रभाषा का रूप उत्तर भारतीय नहीं, दक्षिण भारतीय ही निर्मित करेंगे। वही रूप राष्ट्रभाषा का रूप होगा। पर विभिन्न शैलियों के विद्यमान रहते हुए भी हिन्दी अपनी मूलप्रवृत्ति और प्रकृति नहीं खोयेगी।

बाज़ारू हिन्दी का रूप प्रत्येक प्रदेश में किंचित् भिन्न होगा। नागपुर के बाजार में जो हिन्दी बोली जायेगी उसमें मराठी की महक, मद्रास में बोली जाने वाली हिन्दी में तमिल की तिलांद, कलकत्ते में बोली जाने वाली हिन्दी में बंगला की बू, गुजरात में बोली जाने वाली हिन्दी में गुजराती की गंध, असम में बोली जाने वाली हिन्दी में असमी का आमोद विद्यमान रहने की पूर्ण सम्भावना है। बोलचाल में हिन्दी का एक रूप और सामने आ रहा है जिसमें अंग्रेज़ी का अहंकार छलछलाता है। इसमें क्रिया-रूप या कुछ शब्द ही हिन्दी के रहते हैं। ऐसी हिन्दी को इंग्लिस्तानी या क्रिस्तानी हिन्दी कहा जा सकता है। पर यह स्थिति बहुत समय तक नहीं रहेगी। हिन्दी को राज-मान मिलने पर जनता परिनिष्ठित भाषा का अनुकरण करना चाहेगी।

ग्राम्य-भाषा क्षेत्रीय भाषा होती है। उसमें धीरे-धीरे नागर शब्द प्रवेश कर जाते हैं। जो अधिक धोखेबाजी करता है उसे ग्रामवासी 'चार सौ बीसी' कहने लगे हैं। ऐसे बीसियों शब्द उदाहृत किए जा सकते हैं। मोटर बसों, रेलो, बिजली आदि की गाँवों में सुविधाएँ बढ़ जाने से ग्रामवासी नागर सभ्यता की भाषा को अपनाने लगे हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी भासने लगता है कि जो भारत गाँवों में बसा कहा जाता था वह कहीं नगरों में बसा न कहा जाने लगे।

आज राजनैतिक कारणों से हिन्दी का अहिन्दी क्षेत्रों मे जो विरोध सुन पड़ता है वह अधिक समय तक नहीं रह पायेगा। राजनैतिक कारण ही उसकी उपयोगिता सिद्ध करेंगे और उसे अखिल भारतीय व्यवहार-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर देंगे। कोई व्यक्ति क्षेत्रीय भाषा या टूटी-फूटी अंग्रेजी का ज्ञान सम्पादित कर अखिल भारतीय स्थान प्राप्त नहीं कर सकता। प्रत्येक देशवासी अपनी संतति को राष्ट्र का उत्तम नागरिक बनाना चाहेगा। स्वाधीन देश में प्रत्येक बालक

राष्ट्र-नेता वनने की आकांक्षा रख सकता है। अतः उसे ऐसी भाषा सीखने की आवश्यकता अनुभव होगी जो देश के अधिकांश भाग में समझी जाती है। निर्विवाद रूप से हिन्दी ही ऐसी भाषा है जिसमें यह गुण है। वह अपने इस विशिष्ट गुण के साथ अखिल भारतीय भाषाओं की शब्द-निधि अपना कर राष्ट्र व्यापिनी वन जायेगी।

हिन्दी-क्षेत्रीय ग्रामों में खड़ी वोली यद्यपि पूर्णरूप से नहीं वोली जाती तो भी समझ ली जाती है। हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी का ग्राम-रूप क्षेत्रीय भाषा के मिश्रण के साथ प्रचलित होगा। ग्रामों में शिक्षा का प्रचार वढ़ जाने से खड़ी वोली का व्यापक प्रचार होगा और जनता उसे ही अधिक से अधिक अपनाती जायेगी।

मेरा विश्वास है, भविष्य में खड़ी वोली क्षेत्रीय भाषाओं के साथ-साथ व्यवहार-भाषा वन कर अंग्रेज़ी को अपदस्थ कर देगी।

पंजाबी हिन्दी

पाँच नदियों का यह भूभाग भारतीय इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। इसे उचित ही भारत का सिंहद्वार कहा गया है। आर्य सभ्यता का विकास यहीं हुआ है। वैदिक युग में इसे सप्तसिन्धु और महाभारत काल में पंचनद की संज्ञा प्राप्त थी परन्तु ईसा की लगभग तेरहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने जो अलाउद्दीन के समय में वर्तमान थे इसका फारसी रूपान्तर 'पंजाब' कर दिया।[1] जिस पर सम्राट अकबर ने शाही मोहर लगा दी। जो अभी भी टूटी नहीं है।

समय-समय पर इस प्रदेश की भौगोलिक सीमाएँ परिवर्तित होती रही हैं। आधुनिक काल में सन् १९४७ में भारत-विभाजन के साथ ही पंजाब के दो भाग हो गये—एक पश्चिमी पंजाब, जो पाकिस्तान के अधिकार में चला गया है और दूसरा पूर्वी पंजाब, जो भारत के अन्तर्गत है। देश-विभाजन के बाद इसमें गुरदासपुर, अमृतसर, फिरोजपुर, जालन्धर, लुधियाना, गुड़गाँव, हिसार, रोहतक, काँगड़ा, होशियारपुर, अम्बाला, करनाल और शिमला जिले सम्मिलित थे। सिक्ख-रियासतों का समूह पृथक् 'पेप्सू' नामक राज्य में संगठित कर दिया गया था। परन्तु भाषावार प्रान्त रचना के साथ सिक्ख-रियासतें (पेप्सू) भी इसमें सम्मिलित कर दी गयीं। और कुछ नए जिलों का भी निर्माण हुआ है। यहाँ मुख्यतः दो—हिन्दी और पंजाबी भाषाएँ बोली जाती हैं। हिन्दी से तात्पर्य खड़ी बोली से है जो पश्चिमी हिन्दी की प्रधान उपभाषा है। खड़ीबोली के अतिरिक्त पश्चिमी हिन्दी की एक और प्रमुख उपबोली बाँगरू इस राज्य में अनेक उपभेदों के साथ बोली जाती है। खड़ीबोली के भी स्थान-भेद से कई उपभेद खोजे जा सकते हैं। लोक-विश्वास है कि दस-दस कोस पर बोली बदल जाती है पर यह बदलन ऐसी नहीं होती जो मूल बोली से बहुत पृथक् हो और समझ में ही न आये।

पंजाब में खड़ी बोली—खड़ी बोली का मूल स्थान पंचनद की भूमि पंजाब

---

१. पंज आबे दीगर अन्दर मोलताँ आमद पदीद—अमीर खुसरो (१२८० ई०)
पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या ८।

है। यहाँ उसके दो रूप प्रचलित हैं। एक वह जो अम्वाला कमिश्नरी और पटियाला के कुछ भागों में मातृभाषा के रूप में प्रचलित है (अम्बाला ज़िले के रूप को अम्बालवी और पटियाला ज़िले के रूप को पटियालवी कहा जाता है) और दूसरा वह जो सारे पंजाब में व्यवहार-भाषा के रूप में प्रचलित है। व्यवहार-भाषा के भी दो रूप हैं। एक तो वह जो साहित्य अर्थात् सामयिक पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों में और दूसरा वह जो बोलचाल में प्रयुक्त होता है। साहित्यिक रूप साधु हिन्दी से वहुत भिन्न नहीं है पर उस पर भी क्षेत्रीय बोली का प्रभाव यत्र-तत्र विशेष कर 'ने' परसर्ग तथा क्रिया के कुछ कालों के रूपों में दिखाई देता है। बोलचाल की व्यवहार-भाषा पर स्वभावत: निकटवर्ती पंजावी भाषा तथा वाँगरू वोली का प्रभाव पड़ा है। पंजावी परिवार दुभाषी है। वह पंजाबी और खड़ीवोली दोनों का प्रयोग करता है।

भाषा के वर्ण, शब्द तथा वाक्य ये तीन अवयव होते हैं। यों भाषा विज्ञान की दृष्टि से वाक्य की ही प्रधानता है क्योंकि मनुष्य का चिन्तन खण्ड-खण्ड न होकर पूर्ण ही होता है। अत: भाषा विशेष के अध्ययन के लिए हमें प्रारम्भ में उसकी उन ध्वनियों का अध्ययन करना होता है जो उसके व्यवहार में आती हैं। प्रत्येक ध्वनि की अविभाज्य इकाई एक ध्वनि-ग्राम कहलाती है। प्रत्येक भाषा ने अपने ध्वनि-ग्रामों के लिपि-चिह्न निश्चित कर लिये हैं जो उसकी वर्णमाला कहलाते हैं। वर्णमाला के एक होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति उसके उच्चारण में कुछ भिन्नता प्रदर्शित करता है। यह भिन्नता स्थूल रूप से पकड़ में नहीं आ पाती क्योंकि उच्चारण-भिन्नता से अर्थ में भिन्नता नहीं आती। भाषा-परिवर्तनशील होती है। अत: उसमें कुछ पुरानी ध्वनियों का लोप और कई ध्वनियों का आगम होता रहता है। वोलने वालों में कुछ अपनी शिक्षा-संस्कारिता के कारण नवागत ध्वनियों को उनके तत्सम रूप में व्यवहृत करते हैं परन्तु अधिकांश उन ध्वनियों को अपनी भाषा-ध्वनियों में परिवर्तित कर व्यवहार में लाते हैं। उदाहरण के लिए फारसी अरवी की क़, ग़, ज़, आदि और अंग्रेज़ी की ऑ ध्वनियाँ खड़ी वोली में आ गई हैं। उनका व्यवहार लिखने और बोलने में सीमित दायरे (विज्ञ समाज) में ही होता है और विज्ञ-समाज भी विदेशी ध्वनियों को तत्सम रूप में ग्रहण करने का एकमत से समर्थक नहीं है। (मराठी-भाषा में विदेशी ध्वनियों का विना किसी संकोच के मराठीकरण कर लिया गया है। पर हिन्दी भाषी अभी दुविधा में हैं।)

सर्वप्रथम हम साधु और पंजावी हिन्दी-ध्वनियों का अध्ययन करेंगे।

भाषा का दूसरा अंग शब्द है।[1] पंजावी हिन्दी और साधु हिन्दी का शब्द-

---

१. "एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्त :स्वर्लोके च कामधुग्भवति"
—महाभाष्याकार।

भण्डार प्रायः एक है। दोनों में संस्कृत के तत्सम, तद्भव और देशज तथा विदेशी भाषाओं—अरबी, फारसी और यूरोपीय भाषाओं, विशेष कर अँग्रेज़ी के शब्द पाए जाते हैं। पर व्यवहार में पंजाबी हिन्दी में अरबी-फारसी तथा पंजाबी शब्दों का अधिक समावेश हो गया है। भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि कारणों से पंजाबी हिन्दी में कई वर्णों और शब्दों के उच्चारण में साधु हिन्दी से भिन्नता सुनी जाती है। वाक्य-रचना की दृष्टि से भी कुछ भिन्नता परिलक्षित हुई है। इस प्रबन्ध को तैयार करने में मैंने अपने छात्रों तथा सहयोगी मित्रों की बोली और भाषा को आधार बनाया है। सामान्य शिक्षित और अशिक्षित व्यक्तियों के संभाषणों से भी तथ्य ग्रहण करने का प्रयत्न किया गया है। साधु हिन्दी के लिए मैंने उत्तर मध्यप्रदेश जबलपुर की नागर बोली को प्रमाण माना है। परिशिष्ट में साधु हिन्दी का एक अंश दिया गया है जिसे विभिन्न पंजाबी हिन्दी भाषी व्यक्तियों ने अपने स्थान की व्यावहारिक भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

परिनिष्ठित (साधु) हिन्दी और पंजाबी हिन्दी की ध्वनियाँ

स्वर—अ, आ, ऑ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। य और व अर्ध स्वर हैं।

ऊपर दिये गये स्वरों को उनकी उच्चारण-स्थिति सहित दिया जाता है—

विवृत

अ—अर्ध विवृत मध्य स्वर है। यह शब्दो के आदि और मध्य में स्पष्ट उच्चरित होता है। शब्दान्त में सम्बोधन में उच्चारण स्पष्ट होता है—कुछ दीर्घ सा। सामान्यतः उच्चारण प्रायः स्पष्ट नहीं होता। सम्बोधन में—गोविन्द—अ। पंजाबी हिन्दी में शब्दान्त में 'अ' ध्वनि साधु हिन्दी की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। कहीं-कहीं उच्चारण में 'ए' ध्वनि की ओर भी प्रवृत्ति देखी जाती है। जैसे, वह—वेह।

आ—विवृत पश्चस्वर है। तीनों स्थितियाँ शब्द के आदि, मध्य और अन्त में आता है—उदाहरण—आकाश, काला।

ऑ—यह विवृत उच्च पश्चस्वर है। अंग्रेजी तत्सम शब्दों के उच्चारण में प्रायः प्रथम दो स्थितियों में आता है। कॉलेज, ब्लॉटिंग, केटलॉग। पंजाबी हिन्दी में शब्द की द्वितीय ध्वनि जब दीर्घ होती है तब प्रारंभिक दीर्घ 'आ' स्वर ह्रस्व 'अ' में परिवर्तित हो जाता है। उदाहरण—आकाश—अकाश, पाताल—पताल।

इ—संवृत ह्रस्व अग्रस्वर है। यह साधु और पंजाबी हिन्दी दोनों में आदि, मध्य और अन्त में आता है। परन्तु पंजाबी हिन्दी में त्रिवर्णी शब्द की

प्रायः प्रारम्भिक 'इ' ध्वनि उच्चरित नहीं होती। उदाहरण, इकट्ठे—कट्ठे, इलाज—लाज, इरादा—रादा।

ई—यह संवृत दीर्घ अग्रस्वर है। यह साधु हिन्दी में आदि, मध्य और अन्त में आता है (ईख, नतीजा, मकई) परन्तु दीर्घान्त संयुक्त ध्वनि के पूर्व आने पर साधु और पंजावी हिन्दी में ह्रस्व हो जाता है। उदाहरण—परीक्षा—परिक्षा और आकारान्त ध्वनि के पूर्व आने पर ह्रस्व उच्चरित होता है। ईसाई—इसाई।

उ—संवृत ह्रस्व पश्चस्वर है। यह साधु और पंजावी हिन्दी दोनों में आदि, मध्य और अन्त में आता है। उदाहरण, लघु, मधुर, रिपु। परन्तु अन्तिम दीर्घ ध्वनि होने पर मध्य 'उ' उच्चरित नहीं होता। उदाहरण, मथुरा—मथरा।

ऊ—संवृत दीर्घ पश्चस्वर है। आदि, मध्य और अन्त में आता है। उदाहरण—ऊसर, मनहूस, तालू—इसका सहस्वर इससे किंचित् ह्रस्व है—जैसे, वाऊ, खाऊ में। पंजावी हिन्दी में भी कोई अन्तर लक्षित नहीं हुआ।

ए—अर्धसंवृत ह्रस्व अग्रस्वर है। आदि, मध्य और अन्त में व्यवहृत होता है। उदाहरण—एक, अनेक, बोले।

पंजावी हिन्दी में जव शब्द का द्वितीय वर्ण 'क' होता है तब उसका आदि 'ए' प्रायः 'इ' में परिवर्तित हो जाता है। उदाहरण—एक—इक, एकाएक—इकायक।

ऐ—यह संयुक्त (अ ई) स्वर अर्ध विवृत दीर्घ अग्रस्वर है। इसका दीर्घ उच्चारण मैंने अहिन्दी भाषियों के मुख से सुना है क्योंकि वे प्रायः लिखित साहित्य से भाषा सीखते हैं। साधु हिन्दी और पंजावी हिन्दी में इसका उच्चारण ह्रस्व हो गया है,। यह प्रायः प्रारम्भ और अन्त में आता है। परन्तु जव इसके पश्चात् संयुक्त ध्वनि आती है तव दीर्घ उच्चरित होता है। उदाहरण—ऐक्य।

ओ—अर्ध संवृत दीर्घ पश्चस्वर है। यह आदि, मध्य और अन्त में भाषा के दोनों साधु और पंजावी रूपों में आता है। उदाहरण—वोल, कटोरा, खोलो।

औ—अर्धविवृत दीर्घ पश्चस्वर है। इसका उच्चारण प्रायः 'ओ' तथा 'औ' की मध्य ध्वनि के समान होता है। भाषा के दोनों रूपों साधु और पंजावी हिन्दी में प्रायः प्रारम्भ और मध्य में आता है। अहिन्दी भाषी 'औ' का पूर्णोच्चार 'अऊ' करता है। मैंने मराठी भाषियों के मुख से 'अऊर' उच्चारण सुना है। यह लिखित साहित्य पढ़ने के कारण है।

य—तालव्य सघोष अर्धस्वर है। यह आदि, मध्य और अन्त में आता है।

यमक, चायना, गया। साधु तथा पंजाबी हिन्दी में शब्द के आरम्भ में प्रायः 'ज' के रूप में उच्चरित होता है—जैसे, यत्न—जतन।

व—द्वयोष्ठ अघोष अर्धस्वर है। यह आदि, मध्य और अन्त में आता है। उदाहरण—वन, यवन, मेवा। पजाबी हिन्दी में प्रायः 'ब' के रूप में भी उच्चरित होता है। यथा, वन—बन, यौवन—जौबन। अनेक हिन्दी क्षेत्रों में भी व और य की यही स्थिति है।

ऋ—यह स्वर लेखन में प्रयुक्त होता है। बोलचाल की भाषा में इसका उच्चारण प्रायः 'रि' हो गया है। महाराष्ट्री इसका ठीक उच्चारण करने का प्रयत्न करता है। पंजाबी हिन्दी में भी 'रि' उच्चरित होता है। ऋषि—रिषि, ऋण—रिण।

साधु खड़ी बोली में प्रयुक्त अनुनासिक स्वर

अं—अंगरेज, अंगना

आँ—काँस, फाँस

इं—सिंघाड़ा, सिंह

ईं—खींच, गईं

उं—उंनीदी, बुंदेली, चुंदरी

ऊं—ऊंझा, करूंगा, म्याऊं

एं—खेंचातानी, लातें

औं—ओंठ, ओंकार, करोंदा, ढेरों।

पंजाबी खड़ी बोली में जब अनुनासिक प्रारम्भिक वर्ण के पश्चात् व्यंजन आता है तब वह 'न्' ध्वनि के साथ उच्चरित होता है।

हंसी—हन्सी (मुझे हन्सी आती है)

हां जी—हान्जी (हान्जी, आप ठीक बोलते हैं।)

भांति—भान्ति

व्यंजन

क्	च्	त्	ट्	प्
ख्	छ्	थ्	ठ्	फ्
ग्	ज्	द्	ड्	ब्
घ्	झ्	ध्	ड़्	भ्
ङ्	ञ्	न्	ढ्	म्
			ढ़्	
	श्	ष्	ण्	ह्
	य्	र्	ल्	व
			ळ्	

पंजाबी हिन्दी में उपर्युक्त सभी व्यंजनों के अतिरिक्त वैदिक कालीन मूर्धन्य ळ ध्वनि भी सुन पड़ती है। यथा—काळा। पंजावी हिन्दी में ढ़ ध्वनि कम ही सुनी जाती है। साधु हिन्दी में जहाँ 'ढ़' आती है वहाँ पंजाबी हिन्दी में वह 'ड़' हो जाती है। यथा, चढ़ना—चड़ना,पढ़ना—पड़ना।

स्पर्श व्यंजन

क्—अल्पप्राण, अघोप और स्पर्श व्यंजन है। यह आदि, मध्य तथा अन्त में आता है। उदाहरण—कवच, पकड़, लचक।

ख्—महाप्राण, अघोप और स्पर्श व्यंजन है। यह तीनों अवस्थाओं आदि, मध्य और अन्त में आता है। उदाहरण—खटपट, मखमल, चखचख।

ग्—अल्प्राण, सघोष और स्पर्श व्यंजन है। तीनों अवस्थाओं में आता है। उदाहरण—गरीब, मगर, जग।

घ्—महाप्राण, सघोष और स्पर्श व्यंजन है। तीनों अवस्थाओं में आता है। यथा—घट, बघार, निदाघ। परन्तु पंजाब में शब्दारम्भ में 'घ्' का उच्चारण क् ह्, होता है। यथा, घट—कहट्।

ट्—अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है। यथा, टकटकी, पटल, खाट।

ठ्—स्थान-दृष्टि से यह 'ट्' के समान ही है। यह महाप्राण, अघोष और स्पर्श व्यंजन है। ठग, बैठना, गाँठ।

ड्—अल्पप्राण, सघोप, मूर्धन्य और स्पर्श व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है।
उदाहरण—डाल, मंडल, खड्ड।

ढ्—महाप्राण, सघोष, मूर्धन्य और स्पर्श व्यंजन है। यह आदि स्थिति में आता है। यथा, ढक्कन, ढलन।

त्—अल्पप्राण, अघोष और स्पर्श व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है। तमाचा, कतरनी, घात।

थ्—महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है। यथा, थल, मथना, साथ।

द्—अल्पप्राण, सघोप और स्पर्श व्यंजन है। तीनों अवस्थाओं में आता है। दमक, बदलना, मद।

ध्—महाप्राण, सघोष, स्पर्शव्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है। धन, माधव, साध।

प्—अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है। उदाहरण—पलंग, चपल, चुप।

फ्—यह महाप्राण, अघोप, स्पर्श व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है।
उदाहरण—फल, कफन, वरफ।

व्—अल्पप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है। वल, सवल, कव।

भ्—महाप्राण, सघोष, स्पर्श व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है। भला, भभक, नभ।

पंजावी हिन्दी में शब्दारम्भ की, 'भ' ध्वनि 'प' में 'ह' ध्वनि तथा स्वराघात सहित परिवर्तित हो जाती है। यथा, भारत—प्हारत, भिंडी, प्हिंडी।

स्पर्श संघर्षी

च्—अल्पप्राण, अघोप, स्पर्श संघर्षी व्यंजन है। तीनों आदि, मध्य और अन्त स्थितियों में आता है—चमचम, बचपन, सच।

छ्—महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है—छल, बछड़ा, पीछे।

ज्—अल्पप्राण, सघोष, स्पर्श संघर्षी व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है जल, मज़दूर, कंज।

झ्—महाप्राण, सघोप, स्पर्श संघर्पी व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है। झलमला, सुलझना, साँझा।

पंजाबी हिन्दी में 'झ' ध्वनि अल्पप्राण स्वराघात सहित 'च' में 'ह' ध्वनि सहित परिवर्तित हो जाती है—यथा, झड़ी—च्हड़ी, झाड़ू—च्हाड़ू।

पार्शिवक—

ल्—अल्पप्राण, सघोष, वर्त्स्य व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है। यथा, ललक, विलविलाना, बल।

लुंठित-र्—अल्पप्राण, वर्त्स्य, सघोष व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है। यथा, राम, मरण, खर।

उत्क्षिप्त-ड़्—अल्पप्राण, सघोष मूर्धन्य, व्यंजन है। मध्य और अन्त की स्थितियों में आता है। उदाहरण—कड़कना, कड़ा।

ढ़्—महाप्राण, घोष, मूर्धन्य, उत्क्षिप्त व्यंजन है। आदि में नहीं आता। यथा, पढ़ना, वाढ़। पंजावी हिन्दी में 'ढ्' प्रायः 'ड़्' में अन्तर्मुक्त सा जान पड़ता है। बाढ़, पढ़ना क्रमशः बाड़ और पड़ना सुने जाते हैं।

संघर्षी

स्—दन्त्य, अघोप, संघर्षी ऊष्म व्यंजन है। तीनों स्थितियों में आता है।

यथा—सब, मसलना, बस।

श्—तालव्य, अघोष ध्वनि है जो संस्कारी वक्ता के शब्द के प्रारम्भ मध्य तथा अंत में प्रयुक्त होती है। यथा, शक्कर, वशीकरण, होश।

(पटियाला जिले में 'श' का उच्चारण प्रायः स् होता है। शहर—सहर)

ह्—यह काकल्य अघोष संघर्षी ध्वनि है। ह् ध्वनि विसर्ग का प्रयोग प्रायः संस्कृत तत्सम शब्दों और रागात्मक या विस्मयादिबोधक शब्दों—जैसे छिः छिः—में होता है। ख्, ठ्, आदि महाप्राण ध्वनियों में भी ह् ध्वनि पाई जाती है। शब्द के अन्त में आने वाला ह् घोष है। यथा, यह, दाह, माह। यह तीनों स्थितियों में आता है—हम, कहना, वह। शब्दान्त की ह् ध्वनि अघोष उच्चरित होती है। पंजाबी हिन्दी में शब्द के मध्य और अन्त में प्रायः नहीं आती।

ऊपर वर्णित व्यंजनों को उच्चारण, प्रयत्न तथा स्थान की दृष्टि से दर्शाया गया है—

	द्वयोष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	मूर्धन्य	तालव्य	कण्ठ्य	काकल्य
अवरोधी स्पर्श	प,फ,व,	ध,भ,	त्थ्द्ध्	ट्ठ्ड्ढ्	च्छ्ज्झ्	क्ख्ग्घ्	
स्पर्ष संघर्षी							
नासिक्य	म्		न्			ङ्	
अनवरोधी पार्श्विक			ल्				
लुंठित			र्				
संघर्षी			स्		श्		ह्
उत्क्षिप्त				ड़्ढ़्			
अर्धस्वर	व्				य्		

टिप्पणी—कुछ भाषा-विज्ञानी, ग्लीसन, बेली आदि चवर्गीय ध्वनियों को स्पर्श ध्वनियाँ ही मानते हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि संभव है कि भारतीय चवर्गीय ध्वनियों को स्पर्श संघर्षी समझने में कुछ प्रभाव 'च्' 'ज्' ध्वनियों का भी हो। अंग्रेजी में 'च्' 'ज्' अवश्य संघर्षी ध्वनियाँ हैं।

पंजाबी खड़ी बोली में परिनिष्ठत खड़ी बोली की ध्वनियों के अतिरिक्त मूर्धन्य पार्श्विक अल्पप्राण वैदिक 'ळ' ध्वनि भी है (यह ध्वनि राजस्थानी गुजराती तथा मराठी में भी पाई जाती है) यथा—बल, बळ।

अनुनासिक व्यंजन

साधु (परिनिष्ठित) हिन्दी में ङ्; ण्; न्, म्, म्ह्, अनुनासिक व्यंजन मिलते हैं।

ङ्—कण्ठ्य, अल्पप्राण, सघोष, ध्वनि है। यह शब्द के प्रारम्भ तथा अन्त में

नहीं आती, मध्य में 'क' वर्ग के पूर्व आती है। यथा—वाङ्मय, शङ्का।

ञ्—तालव्य, सघोष अल्पप्राण ध्वनि है। केवल लेखन में दिखाई देती है। चवर्गीय ध्वनियों के पूर्व उच्चारण में वह 'न्' में अन्तर्मुक्त हो जाती है। यथा, व्यञ्जन—व्यंजन, कञ्ज—कन्ज।

ण्—मूर्धन्य अल्पप्राण, सघोष ध्वनि है। शब्दों के आदि में नहीं, मध्य और अन्त में आती है। हिन्दी क्षेत्रीय बोलियों में यह 'न्' में परिवर्तित होती जा रही है। परन्तु पंजाबी हिन्दी में प्रायः मध्य तथा अन्त में 'ण्' ध्वनि आती है। यथा—पाणी, राणी, वणेगा।

न्—अल्पप्राण, सघोष, वर्त्स्य ध्वनि है। यह बहुतायत से प्रयुक्त होती है। साधु हिन्दी में शब्द के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में आती है। यथा—नमक, वनमाली, वन। पंजाबी हिन्दी में यह मध्य और अन्त में प्रायः नहीं आती, 'ण' में परिवर्तित हो जाती है। यथा—कणक, पाणी।

न्ह्—महाप्राण सघोष, वर्त्स्य ध्वनि है। यह साधु हिन्दी में शब्दारम्भ में नहीं आती, पंजाबी हिन्दी में आती है। यथा, नहाना—न्हाणा।

म्—सघोष, अल्पप्राण ओष्ठ्य ध्वनि है। साधु हिन्दी तथा पंजाबी हिन्दी में शब्द के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में आती है। यथा—ममता, समता, काम।

म्ह्—महाप्राण, सघोष, ओष्ठ्य ध्वनि है। साधु हिन्दी में मध्य में आती है। यथा—तुम्हारा, परन्तु पंजाबी खड़ी बोली में अनुनासिक व्यंजन ध्वनि 'म्ह' राजस्थानी प्रभाव से कहीं-कहीं 'म्हारा शब्द' में सुनी जा सकती है। पर मध्य में प्रायः नहीं सुनी जाती।

परिनिष्ठित हिन्दी की अनुनासिक ध्वनियों का वितरण दिया जाता है। + चिह्न (धन चिह्न) है, स्थिति का द्योतक है और (?) (प्रश्न चिह्न) सन्देह-सूचक है।

अनुनासिक ध्वनियाँ	शब्दारम्भ में स्थिति	मध्य स्थिति	अन्त्य स्थिति
म्	(+)	(+)	(+)
न्	(+)	(+)	(+)
ण्	(?)	(+)	(+)
ञ्		(?)	
ङ्		(+)	(+)

प्रो० उदयनारायण तिवारी ने 'ङ्' की अन्त में भी स्थिति मानी है। और

इसका पलङ् उदाहरण दिया है पर पलङ में न ध्वनि के साथ 'ग्' ध्वनि मिश्रित है। मेरे मत से 'ङ्' ध्वनि शब्दान्त में नहीं आती।

पंजाबी खड़ीबोली की अनुनासिक ध्वनियों का वितरण नीचे दिया जाता है—

अनुनासिक ध्वनियाँ	आरम्भिक स्थिति	मध्य स्थिति	अन्त्य स्थिति
म्	(+)	(+)	(+)
म्ह्	(?)	...	...
न्	(+)	(?)	(?)
न्ह्	(+)	—	—
ण्	—	(+)	(+)
ञ्	—	(?)	—
ङ्	—	(?)	(?)

साधु हिन्दी का 'क्ष' वर्ण प्रायः 'छ' या 'क्ख' उच्चरित होता है। यथा, क्षेत्र—छेत्र या छेत्तर, अक्षर—अक्खर, 'ज्ञ' का शुद्ध उच्चारण साधु हिन्दी-क्षेत्र में भी प्रायः समाप्त हो गया है। पंजाबी हिन्दी के समान 'ग्य' उच्चरित होता है।

स्वराघात

गीतात्मक स्वराघात साधु और पंजाबी हिन्दी में व्यंग्य और प्रश्नसूचक वाक्यों में पाया जाता है।

उदाहरण, क—हि—ए—ज—ना—व—क्या—हा—ल हैं ? कहाँ जा रहे—हैं ?

शब्दों में बलात्मक स्वराघात पाया जाता है, जो प्रायः प्रथम दीर्घस्वर पर होता है और उससे भाव में अन्तर भी आ जाता है। यथा—

आज जा रहा हूँ—सामान्य कथन।

आज जा रहा हूँ—आ पर बलाघात होने से निश्चयात्मक भाव द्योतित होता है।

व्यंजन-गुच्छ

साधु हिन्दी में व्यंजन-गुच्छ शब्द के आदि, मध्य और अन्त में आते हैं। उदाहरण—प्रेम, विस्मय, कार्य।

पंजावी हिन्दी

पंजावी हिन्दी में व्यंजन-गुच्छ प्रायः नहीं सुने जाते । संयुक्त व्यंजनों में स्वर-भक्ति हो जाती है—

साधु हिन्दी	पंजावी हिन्दी
स्कूल	सकूल
स्टेशन	सटेशन
प्रेम	परेम
प्राप्त	परापत
कृष्ण	करसन, किरसन

स्वर परिवर्तन

आदि स्वरागम—साधु हिन्दी में जिन शब्दों के आरम्भ में ऊष्म ध्वनियाँ (स, श) होती हैं उनमें प्रारम्भ में 'इ' स्वर का आगम कर्ण-गोचर होता है। यथा—

इ स्टेशन—इस्टेशन
इ स्कूल—इस्कूल
इ स्पोर्ट—इस्पोर्ट
इ स्पेशल—इस्पेशल

परन्तु पंजावी हिन्दी में ऐसी ही स्थिति में शब्द के पूर्व स्वरागम नहीं होता, मध्य में होता है जिसे स्वर-भक्ति भी कहते हैं ।

	साधु हिन्दी	पंजावी हिन्दी
इ	स्टेशन—इस्टेशन	सटेशन या सटेसन
इ	स्कूल—इस्कूल	सकूल
इ	स्पोर्ट—इस्पोर्ट	सपोरट
इ	स्पेशल—इस्पेशल	सपेशल या सपेसल
इ	स्नान—इस्नान अस्नान	सनान

मध्य स्वरागम शब्द के मध्य में स्वरागम के पंजावी हिन्दी में प्रचुर उदाहरण मिलते हैं ।

जन्म	जनम
कर्म	करम
धर्म	धरम
प्रधान	परधान
मर्म	मरम

अन्त्य स्वरागम—साधु और पंजावी हिन्दी में व्यंजनान्त शब्द क्वचित् ही मिलते हैं । यद्यपि शब्द के अन्तिम स्वर का उच्चारण बहुत हल्का होता है तो भी

उसका सर्वथा लोप नहीं कहा जा सकता। पंजाबी हिन्दी में साधु हिन्दी से पृथक् आदि और मध्य व्यंजनागम के उदाहरण मिलते हैं—

आगी	अग्गी
एक	इक्क
यात्रियों	जात्तरियों
गाड़ी	गड्डी

लोप

पंजाबी हिन्दी में स्वर और व्यंजन-लोप के कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं—

स्वर-लोप

आदि

अठारह	ठारां
इलाज	लाज
इरादा	रादा
इक्यावन	क्यावन

मध्य

ठाकुर	ठाकर
अरुण	अरण
गोकुल	गोकल

प्रथम व्यंजन के साथ आनेवाली 'उ' ध्वनि के पश्चात् जब दीर्घ 'ऊ' ध्वनि का व्यंजन आता है तब पूर्व 'उ' ध्वनि का प्रायः लोप हो जाता है। यथा, कुसूर—कसूर, हुजूर—हजूर। यह प्रवृत्ति हिन्दी क्षेत्रों में भी पाई जाती है।

अर्धस्वर लोप—

गाय	गां
अचिन्त्य	अचिन्त
अवश्य	अवस, अवश्

'ह्' के पूर्व आने वाले अर्धस्वर 'य' का लोप हो जाता है। परन्तु 'व' के पश्चात् जब 'ह्' आता है तो 'ह्' का लोप हो जाता है।

यहाँ—हाँ, यथा—राम हमारे हाँ काम करता था।

वहाँ—वाँ, यथा—वाँ मत बैठो।

ध्वनि परिवर्तन

पंजावी हिन्दी में आकारान्त से प्रारम्भ होनेवाले शब्द के पश्चात् जब दीर्घ-

वर्ण आता है तब प्रारम्भिक वर्ण प्रायः ह्रस्व हो जाता है। यथा—

थानेसर	थनेसर
गाड़ी	गड्डी
मामूली	ममूली
तालाब	तलाब

'र' का 'ल' में परिवर्तन भी यत्र-तत्र सुना जाता है—यथा, कुरुक्षेत्र—कुल-छेत्तर। पंजावी हिन्दी में साधु हिन्दी के इकारारम्भी शब्द प्रायः एकारान्त हो जाते हैं—यथा,

फिर	फेर
गिराना	गेराना

परन्तु कहीं-कहीं इकारारम्भी वर्ण अ में भी परिवर्तन सुना जाता है—

इलाज	अलाज
इरादा	अरादा
इक्यावन	अकयावन

पंजावी हिन्दी में द्वितीय वर्ण के 'व' होने पर प्रथम वर्ण ह्रस्व हो जाता है—यथा,

दवाई	द्वाई
गवाही	ग्वाई

पंजावी हिन्दी में साधु हिन्दी शब्दों की 'ध्' ध्वनि का शुद्ध उच्चारण नहीं होता; उसका 'द्' में परिवर्तन पाया जाता है, यथा—साधु—सादु, साद (कहीं-कहीं 'द्' और 'ध' के बीच की ध्वनि भी सुन पड़ती है।) शब्दारम्भ जब 'य' से होता है तब 'य' के स्थान पर 'ज' ध्वनि आ जाती है। यथा—

यत्न—जतन, यश—जस्, जश।

शब्दारम्भ की व्यंजनपूर्व दीर्घ 'ऊ' ध्वनि प्रायः ह्रस्व ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है। यथा, गूंथ—गुन्थ, फूल—फुल।

औ से प्रारम्भ होने वाले शब्द का व्यंजन पूर्व प्रथम वर्ण प्रायः उकारान्त में परिवर्तित हो जाता है—यथा,

चौरानवे	चुरानवै।

व् के ब् और ब् के व् में परिवर्तन के भी उदाहरण मिलते हैं—यथा,

वायु	बायु
बाबा	वावा

शब्दारम्भ में जब 'व्' और, 'य' के पश्चात् 'व' आता है तब कहीं 'अ' स्वरागम के साथ 'य' का लोप हो जाता है और कहीं 'य' लोप के साथ केवल 'इ' ध्वनि का आगम सुन पड़ता है। यथा—

व्यवहार	ववआर, विवहार, विबहार

कहीं 'व्' का 'ब' में परिवर्तन भी सुना जाता है। यथा—

केवल	केबल
वेगवती	बेगवती

पंजाबी हिन्दी में जब शब्द के अन्त में अर्ध-स्वर 'य' आता है तब उसका लोप और उसकी पूर्ववती 'अ' ध्वनि 'ए' में परिवर्तित हो जाती है। यथा—

विनय	बिने
समय	समें

पंजाबी हिन्दी में कतिपय महाप्राण ध्वनि के अल्पप्राण ध्वनि में परिवर्तन के भी उदाहरण पाए जाते हैं—

भारत	पारत (प् के साथ हल्की ह, ध्वनि भी सुनी जाती है।)
धीरे	तीरे (त् के साथ हल्की 'ह' ध्वनि भी सुनी जाती है।)

पंजाबी हिन्दी में शब्द के मध्य में जाने वाली 'र' ध्वनि पूर्ववर्ती वर्ण में मिल जाती है। यथा—

नरेश	न्रेस, न्रेश
गरीब	ग्रीब
शरीफ़	श्रीफ़, स्रीफ़
मरीज	म्रीज
परमात्मा	प्रमात्मा

पंजाबी हिन्दी में द्वित्व की प्रवृत्ति अधिक सुनी जाती है। यथा—

गाड़ी	गड्डी
धोती	धोत्ती
खोती	खोत्ती
जाता	जात्ता
खाता	खात्ता

शब्दों की पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति साधु और पंजाबी हिन्दी में पाई जाती है पर साधु हिन्दी में जहाँ प्रथम शब्द की ध्वनि के वजन पर दूसरा निरर्थक शब्द आता है वहाँ पंजाबी हिन्दी में दूसरे निरर्थक शब्द की प्रथम ध्वनि प्रायः प्रथम शब्द के प्रथम वर्ण की परिवर्तित उकारान्त ध्वनि के साथ आती है (कतिपय विकल्प भी सुन पड़ते हैं)

.साधु हिन्दी	पंजाबी हिन्दी
पानी-वानी	पानी, पूनी, पानी-धाणी

चाय-वाय	चा-चू
मंदिर-वंदिर	मंदर-मुन्दर, मन्दर-सन्दर
काम-वाम	काम-कुम्म, काम-धाम

कतिपय व्याकरणिक प्रयोग

पंजाबी हिन्दी में 'ने' के प्रयोग में साधु हिन्दी से स्पष्ट भिन्नता लक्षित होती है। साधु हिन्दी में कर्त्ता में भूतकाल के कर्मणि प्रयोग में 'ने' परसर्ग प्रयुक्त होता है। यथा—गोविन्द ने रोटी खाई। परन्तु साधु हिन्दी में जहाँ सम्प्रदान कारक में 'ने' परसर्ग नहीं लगता वहाँ पंजाबी हिन्दी में लगता है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है। यथा :—

साधु हिन्दी	पंजाबी हिन्दी
गोविन्द को पुस्तक पढ़नी है।	गोविन्द ने पुस्तक पढ़नी है।
कालेज में गवर्नर को आना था।	कालेज में गवर्नर ने आणा था।
मुझे अथवा मुझको तो इसमें कुछ करना नहीं है।	मैने तो इसमें कुछ करणा नई है।
आपको कहाँ जाना है?	आपने कहाँ जाणा है, आपने कां जाणां है?
तुझे कहाँ जाना है?	तन्ने कां जाणा है?

क्रिया-रूपों के विभिन्न प्रयोग—

साधु हिन्दी	पंजाबी हिन्दी
मैं प्रण कर चुका हूँ।	मैंने परण किया हुआ है।
मैंने एम० ए० कर लिया है।	मैंने एम० ए० की हुई है।

जहाँ निश्चयात्मकता का भाव होता है वहाँ क्रिया में पुनरुक्ति कर दी जाती है।

साधु हिन्दी	पंजाबी हिन्दी
उसे तो पास हुआ ही समझो।	वो तो पास हुआ हुआ है, वो तो पास होयाई होया है।
वह पास हो चुका था।	वो तो पास हुआ हुआ था।

कुछ विशिष्ट प्रयोग—

मुझे मालूम है।	मुझे पता है।
मैं कल दिल्ली जाऊँगा	मैं कल को दिल्ली जाऊँगा। ['को' का इस प्रकार का प्रयोग सहारनपुर, मेरठ में भी होता है।]
जी हाँ।	हान्जी।

साधु हिन्दी में जहाँ 'जी हाँ' प्रयुक्त होता है, वहाँ पंजाबी हिन्दी में 'हान्जी' का विशेष प्रयोग होता है।

साथ-साथ	(पटियाला में) गैल गैल
जब मैं अमृतसर में छात्र था, तब वे मेरे प्रोफेसर थे।	जब मैं अमृतसर में छात्र था, तब वे मेरे प्रोफेसर होते थे।
बुरा लगना	महसूस करना
पहली दिसम्बर को एक महीना हो जायगा।	पहली दिसम्बर को एक महीना बन जायगा।
परसों मेरा क्या हाल होगा ?	परसों मेरा क्या हाल बनेगा ?

भूतकाल में भविष्य सूचक शब्द 'अगले' का प्रयोग—

साधु हिन्दी में जहाँ भूतकाल के लिए पिछले या गत का प्रयोग होता है, वहाँ पंजाबी हिन्दी में प्रायः 'अगले' का प्रयोग सुना जाता है। यथा—

मैं पिछले साल बनारस गया था	मैं अगले साल बनारस गया था।

लिंग—साधु हिन्दी में लिंग के रूप में एकरूपता नहीं पाई जाती। कई विदेशी शब्द दोनों लिंगों में प्रयुक्त होते हैं। यथा—चर्चा, चैन, टेबल आदि।

पंजाबी हिन्दी में भी कुछ शब्द विशेष रूप से स्त्रीलिंग में बोले और लिखे जाते हैं। यथा—तार, खेल। जहाँ ये शब्द साधु हिन्दी में पुल्लिग माने जाते हैं वहाँ पंजाबी हिन्दी में स्त्रीलिंग यथा—तार आ चुकी है, खेल खेली जा रही है।

बचन—साधु हिन्दी में जहाँ तार, मैच, और खेल दोनों वचनों में अविकारी रहते हैं, वहाँ पंजाबी हिन्दी में उनमें बहुवचन में 'एं' प्रत्यय लगता है। यथा—

तार	तारें (कई तारें आई हैं)
खेल	खेलें (लड़के खेलें खेल रहे हैं)
मैच	मैचें (मैचें हो रही हैं)

साधु हिन्दी में स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन में जहाँ अन्तिम 'ए' ध्वनि आती है, वहाँ पंजाबी हिन्दी में 'आं' ध्वनि सुन पड़ती है। यथा—

	साधु हिन्दी	पंजाबी हिन्दी
एकवचन	बहुवचन	बहुवचन
बरात	बरातें	बरातां
बात	बातें	बातां
लट	लटें	लटां

पंजाबी हिन्दी में आदर की दृष्टि से स्त्री के लिये पुल्लिग और बहुवचन का प्रयोग किया जाता है। यथा—

साधु हिन्दी	पंजाबी हिन्दी
माता जी आ रही हैं।	माता जी आ रहे हैं।

विशिष्ट क्रिया-विशेपण शब्दों का प्रयोग—

पंजाव के कतिपय भागों में अव्यय और क्रिया-विशेपणों का भिन्न प्रयोग भी सुना जाता है :—

इधर	इंगे, एधर
किधर	किंगे
उधर	उंगे, ओधर
अव	इब्जां, इवी, इव (पटियाला में)
कव	कद

संख्या

साधु हिन्दी	पंजावी हिन्दी
एक	इक्क, इक
दो	दो
तीन	तिन्न, त्रै,
चार	चार
पाँच	पंज, पांज
छै	छे, छि (पटियाला में)
सात	सत्त, सात
आठ	अट्ठ, आठ
नौ	नौं
दस	दस
ग्यारह	ग्यारां
वारह	वारां
तेरह	तेरां
चौदह	चौदां
पन्द्रह	पन्द्रां
सोलह	सोलां
सतरह	सतरां, सतारां
अठारह	ठारां, अठारां
उन्नीस	उन्नीं, उन्निस
वीस	वी, वीह
इक्कीस	इक्की, इक्किस
वाईस	वाई, वाईस
तेईस	तेई, तेईस

चौबीस	चौबी, चौबीस, चौबीह्
पच्चीस	पच्ची, पच्चिस, पंझी
छब्बीस	छब्बी, छब्बिस
सत्ताईस	सत्ताई, सत्ताइस
अट्ठाईस	ठाई, ठाईस, अठाई
उन्तीस	उणत्ती, उनत्ती
तीस	ती, तीह, तीस
इकत्तीस	कत्तिस, कत्ती
बत्तीस	बत्ती, बत्तिस
तैंतीस	तेत्ती
चौंतीस	चौंती
पैंतीस	पैंती
छत्तीस	छत्ती
सैंतीस	सेन्ती
अड़तीस	अड़त्ती, अठत्ती
उनतालीस	उन्ताली
चालीस	चालि, चालिस
इकतालीस	अकताली
ब्यालीस	ब्याली
तैंताली	तिरताली, तरताली
चवालीस	च्वाली
पैंतालीस	पंजताली
छयालीस	छयाली, छियाली
सैंतालीस	संताली
अड़तालीस	अड़ताली, अठताली
उनचास	उणन्चा, उणन्चास, उणिन्जा
पच्चास	पचास, पंजाह
इक्यावन	क्वावन, अक्यावन
बावन	बावन
तिरपन	तरेपन
चौपन	चौवन
पचपन	पचपन
छप्पन	छप्पन
सत्तावन	सतावन

पंजावी हिन्दी

अठावन	ठावन
उन्सठ	उणसठ
साठ	साठ, सठ
इकसठ	इकसठ
वासठ	वासठ
त्रेसठ	त्रेसठ
चौंसठ	चौंसठ
पैंसठ	पैंसठ
छयासठ	छियासठ
सड़सठ	सड़सठ
अड़सठ	अड़सठ
उनहत्तर	उणत्तर
सत्तर	सत्तर
इकहत्तर	इकत्तर
वहत्तर	वहत्तर, वत्तर
तिहत्तर	तिहत्तर, त्यत्र
चोहत्तर	चुहत्तर, चुअत्र
पच्चतर	पचत्तर, पञ्जत्तर
छिहत्तर	छिहत्तर
सतत्तर	सततर, सतत्तर
अठत्तर	अठत्तर
उनासी	उणासी
अस्सी	अस्सी
इकासी	क्यासी
वयासी	व्यासी
त्रियासी	त्रासी, त्र्यासी
चौरासी	चरासी, चुरासी
पिचासी	पचासी, पचास्सी, पंजासी
छियासी	छियासी
सतासी	सतासी
अठासी	ठासी, अठासी
नवासी	नवासी, उनानवे
नव्वे	नव्वे
इक्यानवे	वयाणवे

बानवे	वाणवे
त्रियानवे	तराणवे
चौरानवे	चुराणवे, चराणवे
पंचानवे	पिचाणवें, पचाणवे
छयानवे	छयाणवें, छियन्नमें
सतानवे	सताणवें, सत्तन्नमें
अठानवे	अठाणवें, अठन्नमें
निन्नानवे	नियाणवें, नियन्नमें, निदानवें
सौ	सौ

क्रमवाचक संख्या शब्द

पंजाबी हिन्दी

प्हेला	इक्किसवां, इक्कीमां	इकतालिसवां, कतालीमां
दूसरा, दूजा	बाईसवां, बाईमां	बतालिसवां, ब्यालीमां
तीसरा, तीजा	तेईसवां, तेईमां	तिरत्तालिसवां, तरतालीमां
चौथा	चौबीसवां, चौबीमां	चतालिसवां, चतालिमां, चुचालीमां
पांचवां, पंजमां	पच्चिसवां, पच्चीमां	पितालिसवां, पंतालिमां
छटा, छेमां	छब्बिसवां, छब्बीमां	छयालिसवां, छयालीमां
सातवां, सत्तमां	सताइसवां, सत्ताईमां	संतालिसवां, संतालिमां
आठवां, अट्ठमां	ठाइसवां, अठाईमां	अड़तालिसवां, अड़तालीमां
नौवां, नौमा	उणतिसवां, उनतीमां	उनिजवां, उणनचसमां
दसवां, दसमा	तीसवां, तीह्मां	पचासवां, पंजाह्मां
ग्यारवां	इक्तीसवां, कत्तीमां	इक्यावणवां, इकविंजमां
बारवां	बत्तीसवां, बत्तीमां	बावणवां, बवंजमां
तेरवां	तेतीसवां, तेतीमां	तरबिंजमां
चौदवां	चौतिसवां, चौत्तीमां	चुरवज्जवां, चुरंजमां
पन्द्रवां	पैंत्तिसवां, पैंत्तीमां	पंचवज्जवां, पंचववंजवा
सोलवां	छत्तिसवां, छत्तीमां	छवज्जवां, छपंजमां
सत्तारवां, सत्तरवां	सैतिसवां, सैंत्तीमां	सतवज्जवां, सतबिजमां
अठारवां, ठारवां	अठत्तिसवां, अठत्तीमां	अठवज्जवां, अठविंजमां
उन्निवां, उन्निसवां	उनतालिसवां, उनत्तालीमां	उनसठवां, उणाहटमां
वीसवां, वीह्मां	चालिसवां, चालीमां	साठवां, सठवां

इकसठवां, काहटमां	इक्यासीवां, क्यासीमां
वासठवां, बाहटमां	ब्यासीवां, ब्यासीमां
त्रिसठवां, तरेहटमां	त्रियासीवां, त्रासीमां
चोसठवां, चौहटमां	चुरासीवां, चुरासीमां
पैंसठवां, पैंहटमां	पिचासीवां, पचासीमां
छियासठवां, छियाहठमां	छियासीवां, छयासीमां
सतासठवां, सताहटमां	सतासीवां, सतासीमां
अड़सठवां, अठाहठमां	अठासीवां, अठासीमां
उणहत्तरवां, उणहत्तरमां	न्वासीवां, नवासीमां
सत्तरवां, सत्तरमां	नब्बेवां, नब्बेमां
इकतरवां, कहत्तरमां	इक्याणवेवां, कान्नमेमां
बहत्तरवां, ब्हत्तरमां	बाणवेवां, बान्नमेमां
तिहत्तरवां, तिहत्तरमां	त्रिणवेवां, तरान्नमेमां
चोहत्तवां, चुहत्तरमाँ	चुराणवेवां, चूरान्नमेमां
पिचत्तरवां, पच्छत्रमां	पिचाणवेवां, पचन्नमेमां
छिहत्तरवां, छिहत्तरमां	छियाणन्वेवां, छेयन्नमेमां
सत्ततरवां, सत्तरमां	सताणवेवां, सतन्नमेमां
अठत्तरवां, अठत्तरमां	अठाणवेवां, अठन्नमेमां
उणासीवां, उणासीमां	निनाणवेवां, नियन्नमेमां
अस्सीवां, अस्सीमाँ	सौवां, सौमां

दिनों के नाम

साधु हिन्दी	पंजाबी हिन्दी
सोमवार	सोमवार
मंगलवार	मंगलवार
बुधवार	बुधवार
बृहस्पतिवार	वीरवार
शुक्रवार	शुक्करवार
शनिवार	शनीवार (पटियाला), छनीचरवार
इतवार	एतवार

महीनों के नाम

साधु हिन्दी	पंजाबी हिन्दी
चैत्र, चैत	चेत
वैशाख, बैसाख	बिसाख, बसाख
ज्येष्ठ, जेठ	जेठ
आषाढ़, असाढ़	साढ़, साड़, हाड़
श्रावण, सावन	सावण, सौण
भाद्रपद, भादौं	भादों
आश्विन, क्वार	असोज, अस्सू
कार्तिक	कत्तक
मार्गशीर्ष, अगहन	मंगसर, मग्धर
पौष	पोह
माघ	माघे
फाल्गुण, फागुन	फागण, फग्गण

साधु हिन्दी का गद्यांश

कला सुबह के समय फुलवाड़ी में फूल बीनने गई थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना और ठाकुर जी के प्रसाद की माला बनाना उसका नित्य का काम था। वह फुलवाड़ी के बीच में पत्थर के छोटे से चबूतरे पर बैठी जूही की माला गूँथ रही थी। आम के बौरों की सुगन्ध से सारा बाग महक रहा था। पक्षी कलरव कर रहे थे। प्रभात की कोमल स्वर्ण आभा, उसके सुन्दर मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई थी। उसके माथे से धोती खिसक गई थी और दो-एक लटें जूड़े से निकल कर वायु में दौड़ रही थी। उसके अन्तस्तल में भी रह-रह कर एक अज्ञात लहर-सी दौड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सबसे वेगवती थीं, उसमें एक तीव्रता और व्याकुलता मिली थी। कला के मन का संसार केवल थोड़ी-सी किशोर स्मृतियों का बना था। उसके बाबा का मधुर व्यवहार, माँ का लाड़-प्यार फूल-पौधे और उसका प्यारा हिरनौटा कानू। इन्हीं के सम्बन्ध की कुछ बातें, कुछ आकार-प्रकार, कुछ रूप-रंग, कुछ वार्तालाप, कुछ सुखद-दुखद भावनाएँ उसके भीतर बार-बार घूम फिरकर उदय और अस्त होती रहती थीं। पर पिछली साँप वाली घटना के बाद उसके अन्तःकरण में एक अज्ञातमय अननुभूत आकुलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकर सर्प ने उसके भीतर घुसकर एक अचिन्त्य, सुप्त आवेश को जागृत कर दिया हो, चिर-विस्मत के आवरण को चीर कर एक अवश-प्रवृत्ति के लिये हृदय में

बिल बना दिया हो।

पंजाबी हिन्दी भाषियों द्वारा उच्चरित रूप

कुमारी रक्षा भल्ला

कला सुवा के समें फुलवाड़ी में फूल बीनने गई थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना और ठाकर जी के परसाद की माला बनाना उसका नित्त का काम था। वह फुलवाड़ी के बीच में पत्थर के छोटे से चबूतरे पर बैठी जूही की माला गुंद रही थी। आम के बौरों की सुगन्द से सारा बाग मैक रहा था। पंछी कलरव कर रहे थे। परभात की कोमल सवर्ण आभा उसके सुन्दर अरण मुख पर पड़ कर उसी में लीन हो गई थी ॰ उसके माथे से धोती खिसक गई थी और दो-एक लटें जूड़े से निकल कर वायु (वाअजु) में दौड़ रही थीं। उसके अन्तासतल में भी रैं-रैंकर एक अग्यात लैर सी दौड़ पड़ती थी। अपनी उस चैंचल भावना का रअस्य उसे मालूम न था, पर उसके हिरदे में वही सबसे वेगवती थी। उसमें एक तोवरता और वकाकुलता मिली थी। कला के मन में संसार केवल थोड़ी-सी किशोर सम-रितियों का बना था। उसके बावा (बावा) का मधुर ववआर, माँ का लाड-पयार, तीरथ जात्रुओं के कुछ छीन संसमरण, आस-पास के कुछ पेड़ फुलवाड़ी के फूल-पौदे, कुछ चिड़ियों की बोलियाँ, काली-धौली गाय, मुन्नी बछिया और उसका पियारा हिरनैटा कानू। इन्हीं के सम्बन्ध की कुछ (कुजी मधुर बातें)। कुछ अकार-परकार कुछ रूप-रंग, कुछ वारतालाप, कुछ सुखद-दुखद भावनायें उसके भीतर बार-बार घूम-फरकर उदै और असत्त होती रहती थीं। पर पिछली साँप वाली घटना के बाद उसके अनताकरण में एक अग्यात भए अनुभूत आकलता उठती रहती थी जैसे उस भअकर सरप ने उसके भीतर घुसकर एक अचिनतय सुपत आवेश को जागरत कर दिया हो। चिर विसमिरित के आवरण को चीरकर एक प्ररविरित के लिए हिरदे में बिल बना दिया।

जिला अमृतसर—कु० हरभजन खारा (शिक्षित व्यक्ति की खड़ी बोली)

कला सुवा (कुछ 'ह' मिश्रित ध्वनि) के समें फुलवाड़ी में फूल बीनने गयी थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना और ठाकर जी के परसाद की माला बनाना उसका नित्त का काम था। वह फुलवाड़ी के बीच में पत्थर के छोटे से चबूतरे पर बैठी जूही की माला गुंथ रही थी। आम की वोरों की सुगन्द से सारा बाग महक रहा था। पक्षी कलरव कर रहे थे। परपात (प और भ की मिश्रित ध्वनि) की कोयल सर्वण आपा उसके सुन्दर अरण मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई थी। उसके माथे से दोअती (धोती के लिए) खिसक गई थी और दो एक लटें जूड़े से निकल कर वायु में दऔर रही थीं उसके अन्तसतल में रैं-रैं कर एक एक अग्यात लेअर सी दऔड़ ('ओ' और 'औ' के बीच की ध्वनि) पड़ती थी।

अपनी उस चंचल पावना (प और भ मिश्रित ध्वनि) का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हिरदे में वही सबसे वेगबती थी। उसमें एक तीबरता और व्याकुलता मिली थी। कला के मन का संसार केवल थोड़ी सी किसोर सिमरितियाँ का बना था। उसके बाबा का मधुर व्यवहार, माँ का लाड़-प्यार (पियार), तीरथ जात्त-रियों के कुछ छीन संसमरण आसपास के कुछ पेड़, फुलवाड़ी के फूल-पौदे, कुछ चिड़ियों की बोलियाँ, काली-धोली गां, मुन्नी बछिया और उसका पयारा हिरनोटा कानू। उन्हीं के समबन्द की कुछ मदुअर बातें, कुछ अकार परकार कुछ रूप-रंग, कुछ वारतालाप, कुछ सुखद-दुखद पावनायें उसके पीतर बार-बार कुअम-फिरकर उदे और अस्त होती रहती थीं। पर पिछली साँप वाली घटना के बाद उसके अन्तकरन में एक अग्यात भै, अनुऊत (अनुभूत) आकुलता उठती रहती थी। जैसे उस पंयकर सरप ने उसके पीतर कुअस कर एक अचिन्त, सुपत अवेश को जागरत कर दिया हो, चिर-विसमरत के अबरन को चीरकर एक अबस परबित्ती के लिए हिरदे में बिल बना दिया हो।

श्री विजय सूद—जिला फिरोजपुर

(एक साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति की खड़ी बोली का उच्चारण)

कला सुबा के समे फुलबाड़ी में फुल बीनन्न गई थी माँ की पुजा के लिए फुल चुनना ठाकर जी के परसाद की माला बनाना नित्त का कम्म था। वह फुलबाड़ी के बिच के बौरों की संगद से सारा बाग मैंक रिया था। पक्शी कलरव कर रय थे। परभात की कोमल सुअरन आबा उसके सुनदर मुख पर पड़ कर उसी बिच लीन हो गई थी। उसके मथ्थे से धोती खिसक गई थी और दो इक लय जूड़े से निकल्ल के बायु में दौड़-दोड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल भआवना का रहस उसे मालूम ना था, पर उसके हिरदे में वही सबसे बेगबती थी, उसमें एक तीबरता और व्याकलता मिली थी। कला के मन का सनसार केबल थोड़ी सी कसोर समरितियों का बना था। उसके बाबा का मधुर व्यवहार माँ का लाड़-पियार तीरथ जातरियों के कुछ छहीन सनसमरण, आस-पास कुछ पेड़ फुलबाड़ी के फूल पौदे, कुछ चिड़ियों की बोलियाँ, काली धौली गाए, मुन्नी बछिया और उसका पयारा हिरनौड़ा कानू। इन्हीं के सबंध की कुच्छ मधर बातें, कुच्छ आकार-परकार कुच्छ रूप रंग, कुच्छ बारतालाप, कुच्छ सुखद दुखद भाआवनायें उसके बार भीयेंतर बार-बार रम फिरकर उदय और असत् होती रहती थीं पर पिछली साँप बाली घटना के बाद उसके अनतरकरण में एक अगियात भै, अनभूत आकलता उठती रहती थी। जैसे उस भैंयकर सरप ने उसके भीयतर घुसकर एक अचिन्त सुपत अवेश को जागरत कर दिया हो, चिर बिसमिरत के अवरन को चीरकर एक अबश परबिरती के लिए हिरदे में बिल बना दिया हो।

प्रेषिका कुमारी चन्द्रकान्ता सूद
जिला पटियाला

कला सुवा (कुछ 'ह्' मिश्रिति ध्वनि) के समें फुल्लबाड़ी में फुल्ल वीनने गई ('व' में 'ह्' की भी कुछ ध्वनि रहती है।) माँ की पूजा के लिए फुल्ल चुनना और ठाकर जी के परसाद की माला वनाना ('व' में थोड़ी 'ह्' ध्वनि भी) उसका नित्त का कम्म ता। वह फुल्लवाड़ी के विच्च माँ पथ्थर के छोटे से चवूतरे ('व' पर अधिक वल) पर बैठी जुही की माला गुंथ रअई (शुद्ध 'ह' का उच्चारण नहीं किया जाता)। अम्व के वूर (वौरों के स्थान पर) की सगन्द से सारा वाग मैक रिया (रेआ) ता। पक्शी कल्ख कर रए ते। परवात ('व' में 'भ' की ध्वनि मिली रहती है) की कोमल सतीर्न आवा ('व' और 'भ' के वीच की ध्वनि) उसके सुनदर अरण मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई तो। उसके मथ्थे से द्रोप्रत्ती ('धोती' के लिए) खिसक गई तो दो इक्क लटां जूड़े से निकल्ल कर वायु में दओड़ रईया तीयां। उसके अन्तसतल में वी ('व' और 'भ' की मिश्रित ध्वनि) रै-रै कर इक्क अग्यात लएर सी दऔड़ पड़ती ती। अपनी उस चंचल वआवना का रहस उसे मलूम न ता पर उसके हिरदे में वही सवसे वेगवती ती। उसमें तीवरता और व्आकुलता हिली ती। कला के मन का सुनसार केवल थोड़ी सी कसोर समरितियों का वना ता। उसके वावा (दोनों शब्दों पर काफी वल देकर उच्चारण किया जाता है) का मदुअर ('मधुर' के लिए), इसमें 'द्' की ध्वनि अधिक और 'घ्' की कम) व्यवहार, माँ का लाड पियार, तीरथ-यात्तरियों के कुछ चशीन संसमरन, आस-पास के कुछ पेड़, फुल्लवाड़ी के फुल्ल-पौदे ओर उसका पियारा हिरनोटा कानू। इन्हीं के सरवन्दअ (सवंदअ यहाँ 'द्' पर अधिक वल) की कुछ वातें, कुछ अकार-परकार, कुछ रूप-रंग, कुछ वारतालाप, कुछ सुखद्-दुखद् वाअवनाएँ उसके वीइत्तर वार-वार गुअम (घूम) फिर कर उदे और असत होती रैहती ती। पर पिछली सांप वाली कअटना के वाद उसके अन्तकरन में इक्क अग्यात भए अननुपुअत (अननुभूत) आकलता उठती रैहती ती। जैसे उस पअंकर (प और भ की मिली-जुली ध्वनि) सरप ने उसके पीइतर कुऊस कर अचिन्त्, सुपत अवेस (आवेश) को जाग्रत कर दिआ हो। चिर-विसमिरत के अवरन को चीरकर इक्क अवस-परविरती के लिए हिरदे में विल वना दिआ हो।

(गद्यांश एक चौथी कक्षा तक शिक्षित व्यक्ति की खड़ी वोली का उच्चरित रूप है।)

जिला होशियारपुर—कु० इन्दु (शिक्षित व्यक्ति की खड़ी वोली)

कला सुवा के समें फुलवाड़ी में फूल बीनन गई थी। माँ की पूजा के लिअे फूल चुनना और ठाकर जी के परसाद की माला वनाना उसका नित्त का काम था। वह फुलवाड़ी के वीच में पथ्थर के छोटे से चवूत्तरे पर बैठी जुही की माला गुंथ रही

थी। पक्शी कलरव कर रहे थे। परभात की कोमल सबर्न आभा उसके सुनदर अरण मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई थी। उसके मथ्थे से धोती खिसक गई थी और दो एक लटां जुड़े से निकल कर वायु में दोड़ रही थीं। उसके अन्तसतल में भी रै-रै (रह-रह) कर एक अग्यात लएर सी दोड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहेस उसे मलूम न था। पर उसके हिरदय में वही सबसे वेगवती थी। उसमें एक तरीबता और विआकुलता मिली थी। कला के मन का सनसार केवल थोड़ी-सी कशोर समरितियों का वना था। उसके वावा (दोनों शब्दों पर काफी वल) का मधुर व्अवहार, माँ का लाड-पयार, तीरथ-जात्तरियों के कुछ क्छीन संसमरन आसपास के कुछ पेड़, फुलबाड़ी के फूल-पौदे और उसका पयारा हिरनोटा कानू। इनही के संवध की कुछ बातें, कुछ आकार-परकार, कुछ रूप-रंग कुछ वार्तालाप, कुछ सुखद-दुखद भावनाएं उसके भीतर वार-वार घूम फिर कर उदे ओर असत होती रहती थीं। पर पिछली सांप वाली घटना के वाद उसके अन्तकरन में एक अगिआत भै अननुभूत आकलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकुर सरप ने उसके भीतर घुसकर एक अचिन्त सुपत अवेश को जागरत कर दिआ हो। चिर-विसमरत के अबरण को चीर कर एक अवश-परबिरती के लिअे हिरदे में विल बना दिआ हो।

नागपुरी हिन्दी

क्षेत्र और वोलने वालों की संख्या—डा० ग्रियर्सन ने अपने लिंग्विस्टिक सर्वे, भाग ६ में इसका उल्लेख किया है और इसका क्षेत्र नागपुर ज़िला वतलाया है, तथा इसके वोलने वालों में केवल वे व्यक्ति सम्मिलित किए हैं जिनकी मातृभापा हिन्दी का कोई-न-कोई रूप है। उन्होंने नागपुरी हिन्दी का जो उदाहरण दिया है वह ऐसे परिवार का है जिसकी मातृभापा वुन्देली है। ग्रियर्सन ने यहीं भूल की है। नागपुरी हिन्दी का क्षेत्र नागपुर ही नहीं, नागपुर के निकटवर्ती जिलों तक जिनमें विदर्भ के जिले भी सम्मिलित हैं, फैला हुआ है, और उसे वोलने वाले हिन्दी-भापा-भापी ही नहीं, अहिन्दी-भापा-भापी भी हैं। वास्तव में यह विभिन्न-भापा-भापियों के वीच विचारों के परस्पर आदान-प्रदान की वोली है। ग्रियर्सन ने अपने उपर्युक्त 'सर्वे' में इसके वोलने वालों की संख्या १०५६०० लिखी है, जो आज उससे कई गुना वढ़ गई है। इसे प्राचीन नागपुर और विदर्भ कमिश्नरियों के रहने वाले दूसरी भापा के रूप में वोलते हैं। यह किसी की मातृभापा नहीं है। इसके क्षेत्र में वसा हुआ मारवाड़ी अपनी मातृभापा मारवाड़ी के साथ-साथ दूसरी भाषाओं के रूप में हिन्दी और मराठी भापाएँ वोलता है। इसी प्रकार तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भापा-भापियों की भी दूसरी वोली नागपुरी हिन्दी है।

नागपुरी हिन्दी की विशेषताएँ

शब्दावली—चूँकि नागपुरी हिन्दी मातृभापा के नहीं, दूसरी भापा के रूप में वोली जाती है, इसलिए इसमे खड़ी वोली के शब्दों के साथ-साथ वक्ता की मातृभापा के कुछ ऐसे शब्द भी सम्मिलित हो जाते है जो सामान्य व्यवहार के होते हैं। इस प्रकार नागपुरी हिन्दी की शब्दावली में।

(१) सस्कृत के कुछ तत्सम और वहुत से तद्भव शब्द जो हिन्दी में साहित्यिक भापा तथा अन्य प्रादेशिक भापाओं और वोलियों में प्रचलित हैं :

(२) फारसी-अरवी मिश्रित उर्दू के सामान्य शब्द जो तद्भव रूप में पाए जाते हैं—जगो, फिकर, जिकर, महजव, कत्तल, आदि।

(२) मराठी के कुछ व्यावहारिक शब्द—झोप, भाऊ, पगार आदि।

(३) अँग्रेजी के कुछ अपभ्रंश शब्द—टेसन, टेम, सीट आदि।

तथा (४) वक्ता की मातृभाषा के कुछ शब्द सम्मिलित हैं।

ध्वनियाँ—नागपुरी हिन्दी में प्राय: वे सभी ध्वनियाँ हैं जो खड़ी बोली में प्रचलित हैं। उनके अतिरिक्त मराठी की च (त्स) और ळ ध्वनियाँ भी आ गईं हैं। फारसी-अरबी की ध्वनियाँ इसमें नहीं आ सकीं। ऋ का उच्चारण उसमें मराठी के समान रू हो गया है। खड़ी बोली की दीर्घ ध्वनियाँ प्रायः ह्रस्व और ह्रस्व ध्वनियाँ दीर्घ हो गई हैं :—

और—ओर

फिर—फीर

ड, ड़ में कोई भेद नहीं है। ड़ का उच्चारण ही नहीं होता।

व ब का उच्चारण-भेद स्पष्ट है।

उच्चारण में ध्वनि-परिवर्तन, आगम, लोप आदि—

पदांत न का ण में परिवर्तन :—

कठिन—कठीण

पदान्त ओ का व में परिवर्तन :—

जाओ (खड़ी बोली)—जाव

र वर्ण के पूर्व औ का हो में परिवर्तन भी पाया जाता है :—

और—होर

औरत—होरत

ह ध्वनि क्षीण या लोप होती जा रही है :—

तुम्हें (खड़ी बोली)—तुमे

साहब (खड़ी बोली)—साब

शब्द के अन्त में 'ह' का लोप और 'आ' का आगम:—

बारह—बारा

तेरह—तेरा

शब्द के आदि में स का छ में परिवर्तन :—

सब—छब

सच—छच

कहीं-कहीं ओ का ऊ में परिवर्तन :—

परसों—परसू

'व' और 'ह' के पास-पास आ जाने पर उनका 'भ' में परिवर्तन और 'ए' का आगम :—

बहन—भेन

पद में वर्णों के ऊपर अनुस्वार का उच्चारण लुप्त होता जा रहा है :—

पाँच—पाच

नवाँ—नवा

संज्ञा शब्द-रूप का वैशिष्ट्य—कुछ अकारान्त संज्ञा शब्दों का बहुवचन आ और कभी आँ से तथा कभी-कभी अन्तिम ध्वनि को हलन्त करने से भी बनता है:—

बात—(१) बाता (२) बाताँ, (३) बात्याँ

(बाताँ कर्ते झोप लग गइ)

अकारान्त संज्ञा शब्द के अन्तिमें दीर्घ स्वर को ह्रस्व (हलन्त) करके उसमें या जोड़ देने से छोटेपन या तिरस्कार का भाव द्योतित होता है:—

घीसा—घीस्या

सम्बोधन में भी यही रूप रहता है :—

ओ घीस्या ? काँ (कहाँ) जा र्‌या (रहा) है।

लिंग—खड़ी बोली के समान ही दो लिंग—स्त्रीलिंग और पुल्लिग—होते हैं। पर खड़ी बोली में जहाँ ईकारान्त पुल्लिग पद में इन लगाने से स्त्रीलिंग होता है वहाँ नागपुरी हिन्दी में मूल शब्द में—अन लगता है :—

तेली—तेलन

गोली—गोलन

धोबी=धोबन

बचन—प्राय: खड़ी बोली के प्रत्यय लगकर बनते हैं। परन्तु ईकारान्त संज्ञा-पदों में ई के स्थान पर याँ लगाने की प्रवृति है। ऐसी स्थिति में उसका पूर्ववर्त्ती वर्ण हलन्त हो जाता है :—

रोटी=रोट्याँ

गाली—गाल्याँ

क्रमवाचक संख्या शब्द—पहिला, दुसरा, तिसरा, चवथा, पाचवा, छटवा, सातवा, आठवा, नवा, दसवा आदि। खड़ी बोली में जहाँ सामान्य संख्या चार के बाद की शेष संख्याओं में वाँ जुड़ता है वहाँ नागपुरी हिन्दी में वा जुड़ता है।

कारकों की विभक्तियां—

कर्ता—ने

कर्म और सम्प्रदान—कू, कूँ, को, के, करने

अपादान—सू, सूँ, सो, से,

संबंध—का, के, की

अधिकरण—मो, मे, पे

सर्वनाम—व्यक्तिवाचक सर्वनाम के चिह्न इस प्रकार हैं :—

एकवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष—मे, हम	हम, अपन
कर्ता—द्वितीय पुरुष—तू, तुम	तुम, तूम
तृतीय पुरुष—वो	वो
कर्म—संप्रदान—प्र० पुरुष—	मुजे, मुंजे, मुजकू, हमें, हमकू, हमनेकू
द्वितीय पुरुष—तुजे, तुजकू, तेरेकने	तुमकूँ, तुमकू

अतएव (इसलिए) के लिए करके का प्रयोग मराठी के म्हणून के अर्थ में व्यवहृत होता है :—

दादा घुस्सा कर्ते करके तो मे नइ आया।
(दादा गुस्सा होते इसलिए मैं नहीं आया)

व्याकरण सम्वन्धी अन्य विशेषताएं—

अकर्मक क्रिया में कर्ता के साथ ने का प्रयोग—

हमने एक दुसरे को मदत कन्ना चइये।
(हमें एक दूसरे की मदद करना चाहिए)

सहायक क्रिया के वर्तमान काल में ह का उच्चारण प्राय: नहीं हो पाता,

जाता उँ

ए का य में परिवर्तन हो जाता है—

है—हय

क्रिया के कर्ता में ने चिह्न लगकर भी क्रिया में हूँ लग जाता है—

मैंने रोई हुँ, मैंने लाया हुँ।

किसी वात पर आग्रह प्रकट करने के लिए 'च' का प्रयोग—तुमकू चलनच पड़गा (तुम्हें चलना ही होगा)

दक्खिनी अथवा हिन्दवी का भी प्रभाव नागपुरी हिन्दी पर परिलक्षित होता है। नागपुरी हिन्दी में बुन्देली और मालवी का प्रामुख्य, जिसकी ओर ग्रियर्सन ने संकेत किया है, प्राय: नहीं के वरावर रह गया है। वह स्थानीय ध्वनि-प्रक्रिया, कतिपय नई विभक्तियों और प्रत्ययों के साथ खड़ी वोली का मूल ढाँचा सुरक्षित रखे हुए है।

ग्रियर्सन ने अपने 'सर्वे' में नागपुरी हिन्दी का जो उदाहरण दिया है, उसे नीचे दिया जाता है। इसे ग्रियर्सन ने बुन्देली वोली से आच्छादित कहा है—

"एक आदमी खे दो पोरया हते। ओ में को नन्हो लरका वाप खे किहे दादा मोरे हिस्सा को माल मोखे देदे। फेर ओ ने अपनी जिनगी की कमाई दोई पोरयन खे वाटनी कर दई। आगे थोड़च दिन में नन्हें पोरया ने अपनी सव धन साकड़ी। फेरऊ दूसरे मुलक में फिरन खे गओ। कहाँ अपनो सव पैसा ओने चहुलवाजी में

उड़ा दओ।"

उपर्युक्त पंक्तियों में सम्प्रदान का ख बुन्देली का ही नहीं, निमाड़ी का भी है, जो मध्यप्रदेश के निमाड़ जिले में बोली जाती है। यह बाजार में बोली जाने वाली नागपुरी हिन्दी नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में आकर बसा हुआ परिवार बहुत काल तक अपनी क्षेत्रीय बोली बोलता रहता है। अतएव नमूना किसी परिवार विशेप की बोली से न लेकर सामान्य जनता की सार्वजनिक रूप से बोली जाने वाली भापा से लेना चाहिए। अब मैं आपके सम्मुख उस नागपुरी हिन्दी का उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ जिसे सामान्य लोग बाज़ारों में बोलते-पहचानते हैं। (अब मैं आपके समीर नागपुरी हिन्दी के नमुने सादर करता उ जिसको बाज़ार के लोक बोलते पिचानते हय)

नागपुरी हिन्दी भाषियों द्वारा उच्चरित रूप

गोविन्दा—(किसन से) कल वड़ी फजर अपन दोनों मिलके फिरने चलेगे। उधी से ठेसन निकल चलेगे होर वाँ वंबे में टपाल डालके, हाटेल में हात मु धोके, च फराव्ठ लेके दवाखाने कु जायगे। में केता ऊ भाऊ मुजें रात कू झोपच नी आती। वर्तमान पत्र लेके वैठता भोत कोसीस करता फीर बी आख लगतिच नई। तवयत ख्प समालता। दुपेर कू जादा खाता वि नई। श्याम को धोड़ने में नागा वि नई करता। कुच समज में नई आता क्या करू। करके तो डाक्तर से फीर से तपासनी कराना हय। उसका पूराना वील की चुकती करना हय। पगार अभी हात में आई नई। उसके वील का हफ्ता देने कू पाकीट में पैसे नई हय। तेरे कने हय कुच ?

किसन—हव ना खूप हाय। मेरी छट्टा करते हो क्या ? शेठ आदमी हो छच वोलो। तुमारे खीसे में पैसे नई हय क्या ? क्या फोक झारते हो भाऊ।

गोविन्दा—तुमकू मेरी वाता झूट मालुम पड़ती हय तो कुछ हरकत नहीं।

खड़ी बोली में रूपान्तर

गोविन्दा—(किसन से) कल बड़े सवेरे हम दोनों साथ-साथ घूमने चलेंगे। उधर ही से स्टेशन निकल चलेंगे और वहाँ वंबे (लेटर वाक्स) में चिट्ठी डालकर, होटल में हाथ-मुँह धोकर और चाय नाश्ता लेकर अस्पताल जाएंगे। मैं कहता हूँ, भाई, मुझे रात को नींद नहीं आती। समाचार पत्र लेकर बैठता हूँ, वहुत कोशिश करता हूँ। फिर भी आँख लगती ही नहीं। तबीयत खूब संभालता। दोपहर को ज्यादा खाता भी नहीं। शाम को दौड़ने में नागा भी नहीं करता। कुछ समझ में नहीं आता। (कि) क्या करूँ। इसीलिए डाक्टर से फिर से जाँच करवानी है। उसका पुराना विल भी चुकाना है। वेतन अभी हाथ में आया नहीं। उसके विल

की किश्त देने को जेब में पैसे नहीं हैं। तेरे पास हैं कुछ ?

किसन—हाँ ना, खूब है। क्यों मेरा मज़ाक उड़ाते हो ? सेठ आदमी हो। सच बोलो। क्या तुम्हारी जेब में पैसे नहीं हैं ? क्या गप मारते हो भाई।

गोविन्दा—तुमको मेरी बातें झूठ मालूम पड़ती हैं तो कोई हर्ज नहीं।

जिस प्रकार प्रेमचन्द और प्रसाद में बनारसी और वृन्दावन लाल वर्मा में बुन्देली वहार है, उसी प्रकार नागपुरी लेखकों में भी मराठी महक आने लगी है। यथा—

"हिन्दू धर्म में वेद, स्मृति अनेक ग्रन्थ हैं। परन्तु उन सब ग्रन्थों में सनातनी और नवमतवादी, भाविक चिकित्सक आदि सर्वमतों और पंथो के लोगों के लिए एक ही सर्वमान्य ऐसा गीता को छोड़कर कोई ग्रन्थ नहीं है।"

(गीता प्रणीत व्यवहार शास्त्र)

"गीता ग्रंथ पर अनेक पंडितों ने और पंथवादियों ने चढ़ाए हुए अपने मतों के पेहराव के कारण हर एक को अपने जीवन में साकार करने योग्य गीता का निश्चित मूलरूप पहिचानना कठिन हो गया है।" (वही)

उपर्युक्त उदाहरणों से विदित हो जाता है कि नागपुरी हिन्दी में मराठी शब्दों और किंचित् वाक्य-विन्यास का प्रवेश हो रहा है। संस्कृत और विदेशी शब्द भी अपने मूल तत्सम रूप का अर्थ न देकर मराठी अर्थ देने लगे हैं। उदाहरणार्थ, हफ्ता का अर्थ सप्ताह न होकर किश्त हो गया है। चिकित्सक वैद्य न रहकर आलोचक बन नया है। सादर करना आदर सहित के लिए नहीं, उपस्थित करने के अर्थ में आता है। इसी प्रकार कई मराठी शब्द नागपुरी हिन्दी में ही नही, आदर्श हिन्दी में भी संचारित हो गए हैं। उदाहरणार्थ :—

शिस्त—अनुशासन
शिक्षण—शिक्षा
टीप—(नोट), घोटाला आदि

मराठी का प्रभाव दक्खिनी, हिन्दवी, उर्दू अथवा जिसे आज दक्खिन हिन्दी कहने का रिवाज चल पड़ा है पर पड़ा है, १४वीं शताब्दी से दक्खिनी उर्दू के क्षेत्र हैदराबाद का मराठी भाषा-भाषी जनता से बराबर सम्पर्क रहा है।

मराठी में जोर देने के लिए ही के अर्थ में च प्रयुक्त होता है, जैसे :—

वली अपने चगम में नको होश।

(दक्खिनी का पद्य और गद्य पृष्ठ २३७)

मराठी का 'नहीं' अर्थ बोधक 'नको' दक्खिनी हिन्दवी में खूब प्रचलित है। इसका प्रयोग नागपुरी हिन्दी में नहीं होता, जैसे :—

अरे मन नको रे नको हो दिवाना

कहीं-कहीं दक्खिनी हिन्दी पर मराठी के प्रभाव से कतिपय शब्दों का स श

में परिवर्तित हो गया है और मराठी का होता (था) ता बनकर आ गया है—

स का श

खड़ी बोली—तीन सौ	बंबई या दक्खिनी हिन्दी—तीन शे		
,, पैसे	,,	,, पैंशे	
,, सिखाया	,,	,, शिकाया	

होता का ता

लाया ता। गया ता।

महाराष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में यद्यपि मराठी ने हिन्दी पर प्रभाव डाला है तो भी उसका व्याकरणिक ढाँचा मूलतः सुरक्षित है।

महाराष्ट्री हिन्दी

संत तुकाराम या 'तुकोवा' ने मराठी में धारावाहिक गति से अभंगों की रचना की है। पर कभी-कभी लहर आ जाने पर उन्होंने तत्कालीन वोल-चाल की हिन्दी में भी अभंग और दोहरे कहे हैं। सौभाग्य से श्री विनायक लक्ष्मण भावे ने 'तुकाराम वुवांची अस्सल गाथा' प्रकाशित की है। उसमें 'महाराजा के टालकरी व लेखक संताजी तेली जगनाड़े' की वहियों की "हू-ब-हू नकल" है। संताजी ने तुकोवा के मुख से निःसृत वाणी को उसी समय उसी रूप में लिपिवद्ध करने का प्रयत्न किया है, ऐसा भावे का विश्वास है। इसी से वे इस गाथा को 'निर्भेल (अमिश्रित) प्रसाद' कहते हैं। अन्य अनेक गाथाओं में सम्पादकों ने इस प्रकार की वैज्ञानिक सम्पादन-दृष्टि नहीं रखी। जो हिन्दी के पद इस 'गाथा' में संकलित किए गए हैं, उनमें शब्द-रूपों की एकता कदाचित् ही कहीं भंग हुई हो। इसलिए इससे महाराष्ट्र-क्षेत्र में सत्रहवीं शताब्दी में दूसरी भाषा के रूप में वोली जानेवाली हिन्दी के अध्ययन की सहज सुविधा प्राप्त हो गई है। भाषा का रूप सहसा परिवर्तित नहीं होता। अतएव तुकोवा की भाषा की प्रवृत्तियाँ उनके पूर्ववर्ती और परिवर्ती वहुत से महाराष्ट्रीय संतों की हिन्दी-भाषा में भी देखी जा सकती हैं। इस दृष्टि से भी 'गाथा' की भाषा का अध्ययन आवश्यक है।

ध्वनि-प्रणाली[१]

'गाथा' के हिन्दी-पदों में निम्न ध्वनियाँ पाई जाती हैं—(१) स्वर—अ, आ, ई, उ, ए (ये), ऐ। (यै), ओ, (ऊ), औ (यै) अं।

ह्रस्व इ और दीर्घ ऊ के ध्वनि-चिह्न नहीं मिलते। ह्रस्व इ और दीर्घ ऊ

---

१. तुकाराम के अभंगों की ग्यारह गाथाएँ (भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा संपादित) प्रकाशित हुई हैं। पर भावे की अस्सज गाथा को छोड़कर किसीने भी मूलभाषा की रक्षा का ध्यान नहीं रखा। वहुतों ने तो उसे शुद्ध का अशुद्ध ही कर दिया है। शिवकालीन भाषा और लिपि में तथा आज की भाषा और लिपि में थोड़ा-वहुत अंतर अवश्यम्भावी है।

का काम क्रमशः दीर्घ ई और ह्रस्व उ से लिया गया है। यथा—

चित—चीत (गाथा पृष्ठ १५२)

वापू—वापु।

(अपवाद—कहे तुका सो हि मुंढा[1]—सारी गाथा में एक ही अपवाद है। यह संभवतः मुद्रण-दोष हो सकता है।)

ए, ऐ को क्रमशः ये, यै लिखा गया है। उदाहरणार्थ—येक, यैसा।

ओ को एक स्थान पर उ के समान लिखा गया है। गोरखनाथ के मराठी 'अमरनाथ संवाद' में भी ओ को उँ के समान लिखा गया है। यह ग्यारहवीं शताब्दी का लेखन-प्रकार माना जाता है।

लाल कवली उढ़े पेनाये।

उढ़े में ओ का उच्चारण उ और ओ के वीच की ध्वनि-सा हुआ है। अवरण (औरण) कुं भलो नाव धराई (अस्सल गाथा-पद ८०२)। वोलचाल की खड़ी वोली हिन्दी में भी आज्ञार्थक क्रिया के अन्त में ओ का व के समान उच्चारण होता है। क्योंकि वलाघात उसके पूर्व वर्ण पर होता है।

उदाहरणार्थ—जाव, खाव, लाव,

तुलना—मराठी में—धाव।

कहीं-कहीं औ का उच्चारण ओ के समान भी मिलता है। खड़ी वोली हिन्दी कौन—कोन; तुलना-मराठी—कोण।

अपभ्रंश में भी और के स्थान पर ओ का उच्चारण मिलता है। वात यह है कि वोलचाल की हिन्दी में कौन को कऊन न वोलकर कोन और कौन, के वीच की ध्वनि उच्चारित की जाती है। 'औ' संयुक्त स्वर-ध्वनि मध्य भारतीय आर्य-काल में विलुप्त हो गई थी। उसके स्थान पर 'ओ' स्वर-ध्वनि आ गई थी। अपभ्रंश-ग्रंथों में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। उदाहरणर्थ—यौवन—जोवन। ('ऐ' ध्वनि भी इसी प्रकार ह्रस्व हो गई है)। मालवी, वुंदेली में आज भी औ का उच्चारण प्रायः ओ के समान होता है। उदाहरणार्थ—खड़ी वोली हिन्दी सौ—मालवी सो। 'गाथा' में 'औ' को 'यौ' के रूप में भी लिखा मिलता है। उदाहरणार्थ, और—यौर। कही-कहीं शब्दारम्भ की अ ध्वनि ए के समान उच्चरित हुई है और अंकित की गई है। यथा—

चरन—चेरन (पृष्ठ १५१)

जग—जेग (पृष्ठ १५१)

कहीं-कहीं ए का उच्चारण ई के सदृश हुआ है। यथा—

---

१. देखिए—'तुकाराम वुवांची अस्सल गाथा', भाग १-२।
(विनायम लक्ष्मणा भावे शके १८४९ का आर्यभूषण प्रेस-संस्करण।)

ले जावे—ली ज्यावे (पृष्ठ १५१)

व्यंजन :—

(१)	क, ष, ग, घ,	क	वर्ग
	च, छ, ज, झ	च	वर्ग
	ट, ठ, ड, ढ	ट	वर्ग
	त, थ, द, ध	त	वर्ग
	प, फ, ब, भ	प	वर्ग
	य, र, ल, व, स, ह		

(२) अनुनासिक :—

ण, न, न्ह, म, म्ह

क—वर्ग का द्वितीय वर्ण वर्तमान नागरी लिपि में 'ख' 'चिह्न' से लिखा जाता है। परन्तु प्राचीन पाण्डुलिपियों में महाराष्ट्र में ही नहीं, उत्तर भारत में भी 'ख' के स्थान पर ष ही मिलता है।

मराठी में ख वर्ण का ष से चिह्नित होना शिवकालीन लिपि-प्रणाली कही जाती है।

उदाहरण—पषते सौवते षाट (अस्सल गाथा, पृष्ठ १५३)।

'गाथा' में ड़ ध्वनि-चिह्न नहीं है।

अनुनासिक न के अतिरिक्त न्ह, म्ह, म चिह्न भी मिलते है।

मराठी में ल संबंधी दो ध्वनियाँ वर्तमान है। उदाहरण बालक की ल ध्वनि और तळमळ की ल और ड़ के बीच की ळ ध्वनि।[1]

संताजी की वही में 'ल' ध्वनि को 'ल' के समान और ळ को ळ चिह्न से अंकित किया गया है।

अस्सल गाथा में ड़ ध्वनि का काम ड से लिया गया है।

यथा, पड़े—पडे (पृष्ठ १५४)

---

१. मराठी में मूर्धन्य ळ ध्वनि कहाँ से आई है, इस संबंध में मतभेद हैं। वैदिक 'ळ' और मराठी ळ का संबंध नहीं है। मैक्समूलर के मत को मानते हुए डा० तुलपुले (यादवकालीन मराठी भाषा, पृष्ठ ३१ में) कहते हैं, "वैदिक ऋग्वेद ब्राह्मणों के पाठ में जो ळ है, उसका उद्‌गम ड से है। ऋक् प्रातिशाख्य में ड और ढ की ळ ळह प्रक्रिया कही गई है। ळ ध्वनि द्राविड़ी भाषाओं से आई जान पड़ती है।" ज्ञानेश्वरीकाल में 'ळ' ध्वनि मिलती है। अतएव प्रतीत होता है कि १४वीं शताब्दी में मराठी में ळ ध्वनि प्रचलित हो गई थी। यह ध्वनि पंजाबी, गुजराती, उड़िया और कुछ हिमालय की पहाड़ी बोलियों में भी पाई जाती है।

श, ष, स इन तीनों ऊष्म-ध्वनियों का काम स से लिया गया है[1] पालि, शौर-सेनी और महाराष्ट्री में श का स्थान स ने ले लिया। बोलचाल की हिन्दी में ष तो लुप्त ही हो गया है, 'श' भी साहित्यकारों और पोथी-पुराण पंडितों तक सीमित रह गया है।

'गाथा' में ह्रस्व इ के दीर्घीकरण के असंख्य उदाहरण मिलते हैं, क्योंकि गाथा की लिपि में जैसा कि कहा जा चुका है, ह्रस्व इ है ही नहीं। उदाहरण—

इच्छा—ईछा
मिलना—मीलना
हरि—हरी (पृष्ठ १५४)
चित—चीत
सम्पत्ति—संपती (पृष्ठ १५४)
कठिन—कठीण
शिर—सीर (पृष्ठ १५५)

दीर्घ ऊ के ह्रस्वीकरण के अनेक उदाहरण मिलते हैं : क्योंकि लिपिकार ने दीर्घ ऊ को अपनी वर्णमाला में स्थान ही नहीं दिया।

उदाहरण—खड़ी बोली हिन्दी ऊपर—गाथा	हिन्दी उपर
भूल	भुल
हिन्दू	हींदु
छूटे	सुटे

ह्रस्व उ के पश्चात् संयुक्त स ध्वनि आने पर उ का व में परिवर्तन पाया जाता है—

उस्ताद — वस्ताद

निम्नांकित महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राण ध्वनियों में परिवर्तन पाया जाता है—

(१) झ के स्थान पर ज

उदाहरण—	मुझे	मुजे
	तुझे	तुजे
	समझ	समज

प्रो० दिवेटिया और प्रो० कुलकर्णी का कहना है कि संस्कृत य वर्ण से गुज-राती और मराठी में 'ज' और 'झ' वर्ण आए हैं। डा० तुलपुले ने इस नियम के समर्थन में जो मराठी उदाहरण दिए हैं, वे हिन्दी में भी लागू होते हैं। यथा—

---

१. असल गाथा में लिपिकार द्वारा श के प्रयोग का एक ही उदाहरण मिला है। इसे हम उसकी या प्रेस की असावधानी कह सकते हैं।

कार्य — काज
वंध्या — बांझ
द्यूतकार — जुआरी[1]

मराठी में इनका संस्कृत तालव्य उच्चारण भले ही न रहा हो : में वह विद्यमान है।

(२) ख के स्थान पर क का आगम। यथा—
भूख — भुक
(संस्कृत बुभुक्षा से मराठी भूक)

(३) ठ के स्थान पर ट का आगम। यथा—
झूठ — झुट

(४) फ के स्थान पर प का आगम। यथा—
सफेद — सोपेत

(५) थ के स्थान पर त का आगम। यथा—
हाथ — हात
(संस्कृत हस्त—प्रा० हत्त—मराठी हात)

(६) ध के स्थान पर द का आगम। यथा—
उधर — उदर

(७) छ के स्थान पर च का आगम। यथा—
बिच्छू — बच्चु
तुलना : मराठी—विंचू

कहीं-कहीं ग के स्थान में क का आदेश मिलता है। उदाहरण—
हिन्दी लोग—लोक, संस्कृत—लोक, मराठी—लोक
(मराठी में कई तत्सम शब्दों के अन्त्य व्यंजन-रूप सुरक्षित रह गए हैं।)
जब शब्द के अन्त में द आता है तब द का त में परिवर्तन पाया जाता है।
यथा— पसंद — पसंत
शब्दान्त और कहीं-कहीं मध्य न का ण में परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

कौन — कोण
पानी — पाणी
अपना — अपणा
खाना — षाणा
कठिन — कठीण
(तुलना : मराठी—कठीण)।
जानत — जाणत

१. देखिये—**यादवकालीन मराठी, पृष्ठ २८।**

शब्द में जब द्वितीय वर्ण ह आता है, तब वर्ण एकारान्त हो जाता है और प्राय: ह का लोप भी हो जाता है। यथा—

पहनना	पेनना

दक्खिनी हिन्दी में भी मालवी के समान यही प्रवृत्ति पाई जाती है। यथा—

कहना	केना
रहना	रेना
महना	मेना

कहीं-कहीं ह का भ में परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

दुहत	दुभत

साहित्यिक हिन्दी में जहाँ एक ही शब्द में दो मूर्धन्य ध्वनियाँ निकट-निकट आ जाती हैं, वहाँ 'गाथा' की हिन्दी में प्रथम दन्त्य हो गई है—

साहित्यिक	हिन्दी	टूटे	गाथा—	हिन्दी	तूटे
,,	,,	ठंडी	,,	,,	थंडी
,,	,,	ढ़ेड़	,,	,,	धेड़

'गाथा' में ड़ के स्थान पर र ध्वनि मिलती है। यथा—

झोपड़ी	झोपरी
बछड़ा	बछरा
छोड़	छोर
चमड़ी	चमरी

कहीं-कहीं र के स्थान पर ड भी मिलता है। यथा—

रसरी	रसडी (पृष्ठ १५२)

छ के स्थान पर स ध्वनि—रूप मिलता है। यथा—

छूटे	सुटे
पूछत	पुसत

विधि-क्रिया में श द क ज और य के मध्य य ध्वनि का आगम पाया जाता है। यथा—

जाये	ज्याये
जाओ	ज्याव
बजाय	बज्जाये

अनुनासिक व्यंजन-ध्वनियों के निकटवर्ती स्वर अनुनासिक हो गये हैं। यथा—

खड़ी	बोली	हिन्दी	काम	गाथा	हिन्दी	काम
,,	,,	,,	राम	,,	,,	राम
,,	,,	,,	जिनसे	,,	,,	जीन्हसु
,,	,,	,,	तुम्हारे	,,	,,	तुम्हीर
,,	,,	,,	नहीं	,,	,,	नहीं

संयुक्त र के पूर्ण वर्ण होने के उदाहरण मिलते हैं। यथा—

व्रत	वरत
वस्त्र	वस्तर
गर्व	गरव
शर्म	सरम

य का ज में परिवर्तन है। यह प्रवृति अन्य प्रदेशों में भी पाई जाती है। यथा—

अन्तर्यामी अंतरज्यामी (पृष्ठ १५५)

व का ब में परिवर्तन पाया जाता है। यथा—

विदेश बीदेस

एकाध स्थल पर द का ड में परिवर्तन पाया जाता है।

खड़ी बोली हिन्दी दाग डाग (पृष्ठ १५५)

(तुलना : मराठी—डाग)

सज्ञा-रूप की कतिपय विशेषताएं

संज्ञा में खड़ी बोली के समान ही एकवचन और बहुवचन पाए जाते हैं। बहुवचन प्राय: ए प्रत्यय लगाकर बने हैं। पर कहीं न और ओ प्रत्ययों से भी बनाये गये हैं। यथा—

ए प्रत्यय से बने हुए बहुवचन संज्ञा-शब्द—

छोरा	छोरे
लरका	लरके
गोता	गोते
राजा	राजे

न प्रत्यय के बहुवचन रूप—

संत	संतन[1]
कामी	कामीन[2]

ओ प्रत्यय से बना वहुवचन रूप—

जग जगो

कहीं-कहीं सव जोड़कर भी बहुवचन बनाया गया है—सव लोक व्यंजनांत पुलिग-संज्ञा का एकवचन और बहुवचन-रूप प्राय: समान पाया जाता है।

एकवचन	बहुवचन
लोक	लोक

---

१. संतन पन्ह 'या' ले षडा रहुग—ग्रस्सल गाथा पृष्ठ १५५

२. लोभी के चित धन बैठा कामीन के चीत काम—वही पृष्ठ १५५

यथा—पढ़ीया लोक रिसाये

कर्तृवाच्य संज्ञा

कर्तृवाच्य संज्ञा का एक रूप मिलता है—

कहे तुका सब चलन्हारा

बोलचाल में ह्रस्व न का उच्चारण हलन्त न् सुना जाता है—

क्या गांउ कोण सुनन वाला

छोटा भाव दिखाने के लिए अकारांत संज्ञा-शब्द में ड़ी प्रत्यय लगा मिलता है— नाव नावड़ी

कारक (परसर्ग चिह्न)

कर्ता—कोई चिह्न नहीं मिलता।

कर्म—कुं—उदाहरण—असंतन कुं संत न माने।

करण—सुं, थें।

उदाहरण—सुरा सोही लडे हमसुं, छोडे तन की आस (पृष्ठ १५४)।
मोसु हरी थें कैस वनाये (पृष्ठ १५४)

सम्प्रदान—कुं

अपादान—सुं

संबंध—का, के, की

उदाहरण—कवण का-मंदीर (पृष्ठ १५४)
माता के चीत (पृष्ठ १५५)
कवण की माया (पृष्ठ १५४)

अधिकरण—मे, माही

उदाहरण—मनमे एक ही भाव (पृष्ठ १५१)
अनंदमाही पैठ।

सम्बोधन—रे, हो

उदाहरण—तुकाराम वहुत मीठा रे भर राखु शेरीर। (पृष्ठ २५५)

सर्वनाम

पुरुषवाचक	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष कर्त्ता	मैं, हूँ	हम
कारण	मुजे, से, मोसु	—
सम्प्रदान	मुजे, मेरे को	—
मध्यम पुरुष कर्त्ता	तु, तुं	तुम्ह

सम्प्रदान तुम्हें
अन्य पुरुष सो (पृष्ठ १५४)

मैं—खड़ी बोली हिन्दी—में, संस्कृत—मया—प्राकृत मइ, मए—अपभ्रंश—मइं—मराठी—मी, बंगला—मइ, उड़िया—मुं

' उदाहरण—कहे तुका मैं ताको दास

हूं—संस्कृत अहं—शौरसेनी अहमं, अहऊं—अपभ्रंश—हमुं, हउं, ब्रज—हौं
निमाड़ी—हउ, हूँ, गुजराती—हुँ
उदाहरण—चेलते पीछे हुं फीरूं फीरूं रज उड़ते तेउ सरीर।

मुजे—खड़ी बोली हिन्दी—मुझे, महाराष्ट्री प्राकृत—मज्झ।

हम की उत्पत्ति—प्राकृत अम्हे, म्हे (ह और म के स्थान परिवर्तन से हम)।

तु, तुं की उत्पत्ति—संस्कृत त्वया अथवा त्वम—प्राकृत तुम, तुऊँ—अपभ्रंश—तुहं, खड़ी बोली हिंदी—तू, मराठी–तूं, उड़िया —तुं।

उदाहरण—अल्ला येक तु नवी येक तुं।

तुम्ह, तुम्हें—संस्कृत तुम्यं—प्रा० तुम्हें—अपभ्रंश तुम्हइं—खड़ी बोली हिन्दी में तुम्हें। 'गाथा' में एक जगह सम्प्रदान के रूप में नहीं, कर्ता एकवचन के रूप में प्रयुक्त हुआ है—

उदाहरण—काहे साषी तुम्हें करती सोर।
(सखी तुम क्यों शोर करती हो?)

निर्देशवाचक सर्वनाम—वो, सो, ओ
सो—संस्कृत—सः—प्राकृत—सो

उदाहरण—सुरा सोही लडे हमसु छोडे तन की आस।

निजवाचक—अपणा, आपणा

प्राकृत—अप्पाररों—अपभ्रंश—अप्परउ—खड़ी बोली हिन्दी—अपना

प्रश्नवाचक—कोण, कवन, किया (क्यां)

सम्बन्ध—काहेका, क्यों, किउ, काहे।

संस्कृत—कःपुनः—प्राकृत कवन, कवण, कोउण—ख-बो-हिं-कौन (मराठी—कोण)।

संबंधवाचक—जो, जिस, जिन (को), जो संस्कृत यः—प्राकृत यो, जो, जिस :

सं० यस्य—प्राकृत जस्स—हिन्दी—जिस।

सर्व-बोधवाचक सर्वनाम—सब, सबही सबः, संस्कृत सर्व—प्रा०—सव्व

निश्चयवाचक—(१) निकटवर्ती—ये, उत्पत्ति संस्कृत—एते
(२) दूरवर्ती—उस संस्कृत अनुध्य—प्राकृत—अउस्स

अनिश्चयवाचक—कुच—सं० कश्चित् किछु, संस्कृत किंचिद् प्रा० कछि ख.

बो. हिन्दी—कुछ ।

गुणवाचक सर्वनाम विशेषण—ऐसा, तैसा, कैसा, कइसा ।

"गुणावाचक विशेषण रूपों का संबंध सं० यादृश, तादृश आदि रूपों से जोड़ा जाता है । जैसे संस्कृत—कीदृश—केरिसा—ख. बो. हिं—कैसा ।"

संख्यावाचक शब्द—'गाथा' में ख. बो. हिन्दी के समान बहुत से संख्यावाचक शब्द हैं । पर वर्तमान मराठी में प्रचलित कुछ शब्द भी मिलते हैं—

खड़ी बोली हिन्दी—दो के लिए दोन—मराठी दोन
" " " पच्चीस के लिए पंचीस—मराठी पंचवीस
" " " तैंतीस के लिए तैहतीस—मराठी तेहतीस

क्रिया सम्बन्धी विशेषताएं

वर्तमान काल—एकवचन	बहुवचन
१. हुं, (उं और उ प्रत्यय)	हे (ए प्रत्यय)
२. हे, (ए, ")	हो, ओ "
३. हे, (ए, अत ")	है, ऐ "

उदाहरण (१) रहुं—(मैं रहता हूं)
खेलुं—(मैं खेलता हूं)
लेउ—(मैं लेता हूं)

जानता—जानत—जानता है ।
(२) फोरे—(वह) फोड़ता है ।

भूतकाल—या प्रत्यय उदाहरण दीया
ई प्रत्यय " मुई

भविष्य—ए प्रत्यय " मीले

आज्ञार्थक—उ प्रत्यय " चाषु

(तुलना—अवधी में भी यही प्रत्यय लगता है ।)

कानड़ी हिन्दी

कन्नड़ द्रविड़-भाषा परिवार की एक भाषा है जिसे कर्नाटकी भी कहते हैं। इसका मुख्य क्षेत्र कर्नाटक अथवा वर्तमान मैसूर राज्य है। कन्नड़ की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। एक मत के अनुसार कन्नड़ संस्कृति 'कर्णाटक' का तद्भव रूप है। शब्द रत्नावली के अनुसार कर्णेषु अटति इति कर्णाटक=कर्ण+अट्+अच्=स्वनाम ख्यात देश विशेष। काल्डवैल ने डॉ० ग्रंडर्ट के मत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि कर्णाट कर+नाड से बना है जिसका अर्थ है, काला देश यानी काली मिट्टी का देश। कन्नड़ की प्राचीनता वाराहमिहिर के वृहत्संहिता और सोमदेव के कथासरित्सागर से सिद्ध हो जाती है जहाँ कन्नड़ शब्द आया है। ये ग्रन्थ ईसा की छठी शताब्दी में निर्मित कहे जाते हैं।

सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार कन्नड़ भाषा-भाषियों की संख्या लगभग २,३५,४७,०८१ है। कन्नड़ में संस्कृत-शब्दावली का प्राचुर्य है। इसकी सीमावर्तिनी भाषाएँ तेलुगु, मराठी और तमिल हैं। कन्नड़ का अस्तित्व छठी शताब्दी से शिला लेखों के रूप में मिलता है जिससे सिद्ध होता है कि कन्नड़ भाषा तमिल भाषा के समान ही प्राचीन है। छठी शताब्दी के शिलालेख में केवल गद्य और नवीं शताब्दी तक प्राप्त शिलालेखों में गद्य-पद्य दोनों मिलते हैं। नवीं शताब्दी तक आते-आते कन्नड़ भाषा में काव्य-सृष्टि भी होने लगती है। "प्रो० नागप्पा ने हिन्दी और कन्नड़ के भाषा-गत समान तत्त्व खोज निकाले हैं।

(i) कन्नड़ और हिन्दी का वाक्य विन्यास एक सा हो गया है।

(ii) दोनों भाषाओं की क्रियाएँ प्रायः वर्तमान या भूत कृदन्त की सहायता से बनी हुई हैं।

(iii) दोनों भाषाओं के वाक्यों में कर्म कारक में चिह्न प्रायः लुप्त रहता है।

(iv) हिन्दी और कन्नड़ की संयुक्त क्रियाओं में काफी साम्य है।

(v) कन्नड़ भाषा में करीब ३५ से ४० प्रतिशत तक ऐसी शब्दावली चलती है जो हिन्दी से सर्वथा भिन्न नहीं है।

इन भाषा-गत तत्वों की पर्याप्त समानता के कारण कर्नाटक में हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या दक्षिण के आन्ध्र, तमिलनाड और केरल प्रान्तों से अपेक्षाकृत अधिक है।" (रजत जयन्ती ग्रंथ, राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति वर्धा, पृष्ठ ९१-९२)

कन्नड़ भाषी साधु हिन्दी के शब्दों का किस प्रकार उच्चारण करता है, यह जानने के लिए हमने श्री एम. आर. भागवत आयु तीस वर्ष, एम. ए. (अर्थशास्त्र) से निम्न परिनिष्ठित हिन्दी का अंश पढ़वाया है।

साधु हिन्दी का गद्यांश

कला सुवह के समय फुलवाड़ी में फूल बीनने गई थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना और ठाकुर जी के प्रसाद की माला बनाना उसका नित्य का काम था। वह फुलवाड़ी के वीच में पत्थर के छोटे से चबूतरे पर बैठी जूही की माला गूंथ रही थी। आम के वौरों की सुगन्धि से सारा वाग महक रहा था। पक्षी कलरव कर रहे थे। प्रभात की कोमल स्वर्ण आभा उसके सुन्दर अरुण मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई थी। उसके माथे से धोती खिसक गई थी और दो-एक लटें जूड़े से निकल कर वायु में दौड़ रही थीं। उसके अन्तस्तल में भी रह-रह कर एक अज्ञात लहर सी दौड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सब से वेगवती थी, उसमें एक तीव्रता और व्याकुलता मिली थी। कला के मन का संसार केवल थोड़ी-सी किशोर स्मृतियों का बना था। उसके बाबा का मधुर व्यवहार, माँ का लाड़-प्यार, तीर्थ यात्रियों के कुछ क्षीण संस्मरण, आसपास के कुछ पेड़, फुलवाड़ी के फूल पौधे और उसका प्यारा हिरनौटा कानू। इन्हीं के सम्बन्ध की कुछ बातें, कुछ आकार-प्रकार, कुछ रूप-रंग कुछ वार्तालाप, कुछ सुखद-दुखद भावनाएँ, उसके भीतर बार-बार घूम-फिर कर उदय और अस्त होती रहती थीं। पर पिछली साँप वाली घटना के बाद उसके अन्तःकरण में एक अज्ञात भय, अननुभूत आकुलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकर सर्प ने उसके भीतर गुसकर एक अचिन्त्य, सुप्त आवेश को जागृत कर दिया हो, चिर विस्मृत के आवरण को चीरकर एक अवश प्रवृत्ति के लिए हृदय में बिल बना दिया हो।

कन्नड़ भाषी द्वारा उच्चरित रूप

(श्री एम० आर० भागवत, एम० ए० (अर्थशास्त्र) आयु ३० वर्ष)

कळा सुवह के समैं फुलवाड़ी में फूल वीनने गयी थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना और ठाकुर जी के प्रसाद की माला बनाना उसका नित्ते का काम था। वह फुलवाड़ी के बीच में पत्थर के छोटे से चबूतरे पर बैठी जूही की माला गूँथ रही थी। आम के वौरों की सुगंध से सारा बाग़ महक रहा था। पक्षी कलरव कर

रहे थे। प्रभात की कोमल स्वर्ण आभा उसके सुन्दर अरुण मुख पर पड़ कर उसी में लीन हो गयी थी। उसके माते से धोती खिसक गयी थी और दो एक लटें जूड़े से निकल कर वायू में दौड़ रही थीं। उसके अंतस्तल में भी रह रहकर एक अज्ञात लहर सी दौड़ पड़ती थी अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सवसे वेगवती थी, उसमें एक तीव्रता और व्याकुलता मिली थी। कला के मन का संसार केवल थोड़ी सी किशोर स्मृतियों का वना था। उसके वावा का मधुर व्यवहार, मां का लाड प्यार, तीर्थ यात्रियों के कुच छीन संस्मरण, आसपास के कुछ पेड़, फुलवाडी के फूल पौधे और उसका प्यारा हिर-नौटा कानू। इन्हीं के सम्वन्ध की कुच वातें कुच आकार प्रकार, कुच रूप रंग कुच वार्तालाप कुच सुखद-दुःखद भावनाएं उसके भीतर वार-वार घूम फिर कर उदय और अस्त होती रहती थीं। पर पिचली सांपवाली घटना के वाद उसके अन्तःकरण में एक अज्ञातभय अननुभूत आकुलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकर सर्प ने उसके भीतर घुसकर एक अचिन्त्य, सुप्त आवेश को जाग्रत कर दिया हो, चिर विस्मृत के आवरण को चीर कर एक अवश प्रवृत्ति के लिए हृदय में विल वना दिया हो।

श्री भागवत के उच्चारण में निम्न विशेषता पाई गई।

(१) 'ल' का उच्चारण मूर्धन्य 'ळ' के समान होता है।
(मराठी और राजस्थानी में भी मूर्धन्य 'ळ' पाया जाता है, परि-निष्ठित हिन्दी में नहीं)

(२) शव्द के मध्य 'म' के पश्चात् आने वाले 'य' का लोप हो जाता है। अकारान्त 'म' एकारान्त होता है। यथा, समय—समै
(यह प्रवृत्ति हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में भी दिखाई पड़ती है)

(३) शव्दान्त का संयुक्त 'य' भी लुप्त हो जाता है और अपने पूर्ववर्ती वर्ण को द्वित्व एकारान्त में परिवर्तित कर देता है।

(४) हलन्त 'थ्' का 'त्' में परिवर्तन हो जाता है
यथा, माथा—माता।

(५) शव्दान्त का ह्रस्व उकारान्त दीर्घ ऊकारान्त हो जाता है।
यथा, वायु—वायू।

(६) 'ड़' के स्थान पर 'ड' की स्थिति।

(७) 'छ' के स्थान पर 'च' का आगम।
यथा, कुछ—कुच।

(८) 'क्ष' के स्थान पर 'छ' का आगम।
यथा, क्षीण—छीन।

(९) 'ण' के स्थान पर 'न' का आगम।

कश्मीरी हिन्दी

कश्मीर भारत का मुकुट है, उसकी प्राकृतिक छटा पर मुग्ध होकर ही श्रीधर पाठक ने गाया था—

"प्रकृति यहाँ एकान्त वैठि निज रूप सँवारति"

उसकी इसी अनुपम साज-सज्जा पर पड़ोसियों की आँखें रह-रहकर ललचा उठती हैं। कश्मीर की भाषा 'कश्मीरी' है और लिपि है 'शारदा'। जिसका उद्गम ब्राह्मी लिपि से माना जाता है। ग्रियर्सन ने कश्मीरी को दारद परिवार की भाषा माना है पर कश्मीरी भाषा विशेषतः क्रियापदों और सर्वनामों के रूपों में दारद भाषा-प्रवृत्तियों का अनुसरण नहीं करती। अतः कश्मीरी भाषाविद् ग्रियर्सन के मत का समर्थन न कर उसे पैशाची अपभ्रंश से उत्पन्न आर्य भाषा परिवार की ही एक भाषा मानते हैं। कश्मीरी भाषा में हिन्दी की देवनागरी ध्वनियों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ भी हैं। स्वरों में देवनागरी से अतिरिक्त छ स्वर हैं। वे हैं अ आ, उ, ऊ, एँ, औँ (प्राकृतों के ह्रस्व एँ और ओ के समान हैं)। व्यंजनों में च़, छ़, और ज़ विशेष ध्वनियाँ है। कश्मीरी में घोष महाप्राण ध्वनियों का अभाव पाया जाता है।

कश्मीरी साधु-हिन्दी का जिस तरह उच्चारण करता है उसका नमूना नीचे दिया जाता है।

साधु हिंदी का गद्यांश

कला सुबह के समय फुलवाड़ी मे फूल बीनने गई थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना और ठाकुर जी के प्रसाद की माला बनाना उसका नित्य का काम था। वह फुलवाड़ी के बीच में पत्थर के छोटे से चबूतरे पर बैठी जूही की माला गूंज रही थी। आम के बौरों की सुगन्ध से सारा बाग महक रहा था। पक्षी कलरव कर रहे थे। प्रभात की कोमल स्वर्ण आभा उसके सुन्दर अरुण मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई थी। उसके माथे से धोती खिसक गई थी और दो-एक लटें जूड़े से

निकल कर वायु में दौड़ रही थीं। उसके अन्तस्तल में भी रह-रहकर एक अज्ञात लहर सी दौड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सब से वेगवती थी, उसमें एक तीव्रता और व्याकुलता मिली थी। कला के मन का संसार केवल थोड़ी सी किशोर स्मृतियों का बना था। उसके बाबा का मधुर व्यवहार, माँ का लाड़-प्यार, तीर्थ-यात्रियों के कुछ क्षीण संस्मरण, आसपास के कुछ पेड़, फुलवाड़ी के फूल पौधे और उसका प्यारा हिरनौटा कानू। इन्हीं के सम्बन्ध की कुछ बातें, कुछ आकार-प्रकार कुछ रूप-रंग, कुछ वार्तालाप, कुछ सुखद-दुखद भावनाएँ, उसके भीतर बार-बार घूम-फिरकर उदय और अस्त होती रहती थीं। पर पिछली साँप वाली घटना के बाद उसके अन्तःकरण में एक अज्ञातमय अननुभूत आकुलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकर सर्प ने उसके भीतर घुसकर एक अचिन्त्य, सुप्त आवेश को जाग्रत कर दिया हो, चिर-विस्मृत के आवरण को चीरकर एक अवश-प्रवृत्ति के लिए हृदय में बिल बना दिया हो।

कश्मीरी-भाषी द्वारा उच्चरित रूप

(निम्न अंश का उच्चारण श्री शिवन कृष्ण रैणा ने किया है जिसकी आयु २६ वर्ष की है और जो पी-एच० डी० का अनुसन्धित्सु है)

कला सुबह के समयि फुलव्अेड़ी में फूल बिननि गई थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना और ठोकुर जी के प्रसाद की माला बनाना उसका न्यति का कअेम था। वह फुलवाड़ी के बीच में पत्थर के छूटे से चबूतरे पर बैठी जूही की माला गूंथ रही थी। आम के बौरों की सोगन्द से सारा बाग़ मअहक रहा था। पक्खी कलअरव कर रहे थे। प्रवात की कूमल सरन आबा उसके सुन्दर अरुन मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई थी और दो एक लटिएँ जूड़े से निकलकर वायु में दूड़ रही थीं। उसके अन्तसतल में भी रह-रहकर एक अग्यात लहर-सी दौड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल वावना का रअहस्य उसे मोलूम न था, पर उसके हृदयि में वही सबसे वेगवती थी, उसमें एक तीव्रता और व्याकुलता मिली थी। कला के मन का सम्सार केवल थोड़ी किशोर समृतियों का बना था। उसके बाबा का मौदुर व्यवहार, माँ का लाड़-प्यार, तीरथ-यात्रियों के कुछ खीन समसमरन, आसपास के कुछ पेड़, फुलवअेड़ी के फूल पौदे और उसका प्यारा हिरनौटा कानू। इन्हीं के समवन्द की कुछ बातें, कुछ आकार-प्रकार, कुछ रूप-रंग कुछ वारतालाप, कुछ सुखद-दुखद भावनाएँ, उसके बीतर बार-बार ग़ूम फिरकर उदइ और असत् होती रहती थीं। पर पिछली साम्पवाली गटना के बाद उसके अन्तःकरण में एक अग्या-तमय अननुवूत आकुलता उठती रहती थी जैसे उस वयंकर सर्प ने उसके बीतर गुसकर एक अचिन्त्य सोप्त आवेश को जागरत कर दिया हो, चिर-विस्मृत के

आवरन को चीरकर एक अवश-प्रवरत्ति के लिए हरदय में विल वना दिया हो।

निष्कर्ष

शव्द में म के पश्चात् य के आने पर अकारान्त य इकारान्त में परिवर्तित हो जाता है !

यथा—समय—समयि।

शव्द की अन्तपूर्व आ ध्वनि ए में परिवर्तित हो जाती है।

यथा—फुलवाड़ी—फुल्वअेड़ी।

शव्दारम्भ की दीर्घ 'ई' ध्वनि ह्रस्व हो जाती है।

यथा—वीनने—विननि।

शव्दान्त की ए ध्वनि 'इ' में परिवर्तित हो जाती है।

यथा—वीनेने—विननि।

हिन्दी की ज ध्वनि 'ज़' के समान उच्चरित होती है।

यथा—पूजा—पूज़ा।

शव्दारम्भ की आकारान्त ध्वनि ओकारान्त हो जाती है।

यथा—ठाकुर—ठोकुर।

जव शव्द में त् और य् संयुक्त ध्वनि होती है तव 'ई' ध्वनि वाला वर्ण हलन्त हो जाता है और त् और य् में वर्ण विपर्यय होकर त् इकारान्त हो जाता है।

यथा—नित्य—न्यति।

शव्दारम्भ की आकारान्त ध्वनि ह्रस्व होकर उसके आगे ए ध्वनि का आगम हो जाता है।

यथा—काम—कअेम।

शव्दारम्भ का ओ 'उ' में परिवर्तित हो जाता है।

यथा—छोटे—छूटे।

'च' का उच्चारण 'च्' के समान होता है।

शव्दारम्भ की उकारान्त ध्वनि ओकारान्त हो जाती है।

यथा—सुगंध—सोगन्ध।

शव्द के मध्य 'ह' ध्वनि के होने पर उसके पूर्व 'अ' का आगम हो जाता है।

यथा—महक—मअहक।

'क्ष' का उच्चारण कख के समान होता है।

यथा—पक्षी—पक्खी।

भ का उच्चारण 'व' सदृश होता है।

यथा—प्रभात—प्रवात।

शव्दारम्भ की ओकारान्त ध्वनि ऊकारान्त हो जाती है।

यथा—कोमल—कूमल।

शव्दारम्भ के प्राय: संयुक्त वर्ण उच्चरित नहीं होते, उनमें 'अ' का आदेश हो जाता है।

यथा—स्वर्ण—सरन

'र्' के पूर्व वर्ण का लोप हो जाता है। यथा—

स्वर्ण—सरन

'ण' के स्थान पर 'न' का प्रयोग होता है।

यथा—अरुण—अरुन।

'ध' का उच्चारण 'द' के समान होता है।

यथा—धोती—दोती।

शव्दान्त की ए ध्वनि के वर्ण में इकारान्त का आगम हो जाता है।

यथा—लटें—लटियें।

शव्दारम्भ की 'ओ' ध्वनि का 'उ' में परिवर्तन सुना जाता है।

यथा—दौड़—दूड़।

'ज्ञ' का उच्चारण 'ग्य' होता है।

शव्द के ऊपर के अनुस्वार का उच्चारण 'म्' के समान होता है।

यथा—संसार—सम्सार।

'ल' कार में परिवर्तन भी सुना जाता है।

यथा—मृदुल—मौदुर।

'क्ष' का उच्चारण 'ख' के समान भी होता है।

यथा—क्षीण—खीन।

'घ' का 'ग' के समान उच्चारण होता है।

यथा—घर—गर।

'च' का उच्चारण फारसी 'च़' के समान होता है।

यथा—चर—च़र।

तमिल या तमिष् हिन्दी

तमिल द्रविड़-देश की भाषा का प्रचलित नाम है। यह द्रमिड़, द्राविड़ भी कहलाती है और महाप्राण ध्वनियों के अभाव में तमिलेतर इसे अरवमु भी कहते हैं। यह द्रविड़-परिवार की प्रमुख और सर्व प्राचीन भाषा है। इसकी दो बोलियाँ हैं—एक सेन तमिल—संस्कारी प्राचीन तमिल और दूसरी कोडुन तमिल—आधुनिक व्यावहारिक तमिल। इनमें परस्पर बहुत अन्तर है। सम्भवतः उतना ही जितना संस्कृत और हिन्दी में है।

इसका क्षेत्र बड़ा व्यापक है। यह वर्तमान मद्रास प्रान्त के अतिरिक्त दक्षिण केरल, मैसूर, श्री लंका (सीलोन) आदि स्थानों में भी बोली जाती है। श्री लंका में इसके बोलने वालों की इतनी अधिक संख्या है कि वे इसे वहाँ की राष्ट्रभाषा सिंहाली के समकक्ष वैधानिक स्थान दिलाने का आन्दोलन कर रहे हैं।

द्रविड़-देश में हिन्दी का प्रवेश यद्यपि व्यापार-व्यवसाय के कारण मुसलमानी आक्रमण के पूर्व से ही हो गया था तो भी प्रचार मुसलमानों के दक्षिण-पथ संचार से होने लगा था। (मुसलमानों द्वारा हिन्दी का जो रूप प्रचलित हुआ, वह अरबी, फारसी, खड़ी बोली और स्थानीय बोली का मिश्रित रूप था जिसे उर्दू, दक्खिनी हिन्दी अथवा हिन्दोस्तानी कहा जा सकता है।) महात्मा गांधी के स्वाधीनता-आन्दोलन का एक अंग हिन्दी-प्रचार भी था। उनका विश्वास था कि राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने के लिए राष्ट्र की किसी भाषा को अपनाना चाहिए। हिन्दी को उन्होंने राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया और उसका समस्त देश में व्यवस्थित रूप में प्रचार किया। उन्होंने मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की और इस तरह हिन्दी द्रविड़ भाषा-भाषियों की अहिन्दी-भाषियों के बीच व्यवहार-भाषा बन गई। आज दक्षिण में अंग्रेजी को छोड़कर हिन्दी का स्थान मातृ-भाषा के पश्चात् प्रायः स्वीकृत हो चुका है। उक्त सभा के तत्वावधान में लाखों विद्यार्थी प्रतिवर्ष हिन्दी की विभिन्न परीक्षाएँ देते हैं।

तमिल भाषी परिनिष्ठित हिन्दी किस प्रकार उच्चरित करता है, इसका विवेचन यहाँ किया जा रहा है। पहले हम परिनिष्ठित हिन्दी का अंश, फिर उसका तमिल भाषी द्वारा उच्चरित रूप दे रहे हैं, जिसका उच्चारण श्री एस० राज-

गोपालन (आयु ४५ वर्ष) बी० ए० द्वारा किया गया है।

साधु हिंदी का गद्यांश

कला सुवह के समय फुलवाड़ी में फूल वीनने गई थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना और ठाकुर जी के प्रसाद की माला वनाना उसका नित्य का काम था। वह फुलवाड़ी के बीच में पत्थर के छोटे से चवूतरे पर वैठी जूही की माला गूँथ रही थी। आम के वौरों कीं सुगन्ध से सारा बाग़ महक रहा था। पक्षी कलरव कर रहे थे। प्रभात की कोमल स्वर्ण आभा उसके सुन्दर अरुण मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई थी। उसके माथे से धोती खिसक गई थी और दो-एक लटें जूड़े से निकल कर वायु में दौड़ रही थीं। उसके अन्तस्तल में भी रह-रहकर एक अज्ञात लहर-सी दौड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सवसे वेगवती थी, उसमें एक तीव्रता और व्याकुलता मिली थी। कला के मन का संसार केवल थोड़ी-सी किशोर स्मृतियों का वना था। उसके वावा का मधुर संसार, माँ का लाड़-प्यार, फूल-पौधे और उसका प्यारा हिरनौटा कानू। इन्हीं के सम्वन्ध की कुछ वातें, कुछ आकार-प्रकार, कुछ रूप-रंग कुछ वार्तालाप, कुछ सुखद-दुखद भावनाएँ उसके भीतर वार-वार घूम-फिरकर उदय और अस्त होती रहती थीं। पर पिछली साँप वाली घटना के वाद उसके अन्तःकरण में एक अज्ञात भय, अननुभूत आकुलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकर सर्प ने उसके भीतर घुसकर एक अचिन्त्य सुप्त आवेश को जागृत कर दिया हो, चिर विस्मृत के आवरण को चीरकर एक अवश-प्रवृत्ति के लिए हृदय में विल वना दिया हो।

तमिळ भाषी द्वारा उच्चरित रूप

कळा सुवः के समै फुलवाड़ी में फूल वीनने गयी ती। मां की पूजा के लिए फूल चुनना और टागुरजी के प्रसाद की माला वनाला उस्का निच्च का काम ता। वह फुलवाड़ी के वीच में पत्तर के छोटे से चवूतरे पर वैटी जूही की माला गूँत रही ती। आम के वौरों की सुगंध से सारा बाग़ महक रहा ता। पच्ची कलरव कर रहे थे। प्रभात की कोमल स्वर्ण आभा उस्के सुंदर अरुण मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गयी थी। उस्के माते से दोती किसक गयी थी। और दो एक लटें जूड़े से निकल कर वायु में दौड रही थीं। उस्के अंतस्तल में भी रह-रहकर एक अज्जात लहर-सी दौड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सवसे वेग्वती थी, उसमें एक तीव्रदा और व्याकुलता मिली ती। कला के मन का संसार केवल थोड़ी-सी किशोर स्मृदियों का वना ता। उसके वावा का मदुर व्यवहार माँ का लाड-प्यार, तीर्तयात्रियों के कुच छीण संस्मरण, आसपास

के कुछ पेड, फुलवाडी के फूल पौदे और उसका प्यारा हिरनौटा कानू। इन्हीं के संवंध की कुच वातें, कुच आकार प्रकार, कुच रूप-रंग, कुच वार्तालाप, कुच सुखद दुखद वावनाएँ उसके वीतर बार वार गूम फिरकर उदय और अस्त होती रहती तीं। पर पिचली सांप वाली घटना के वाद उसके अन्तःकरण में एक अज्ञातमय अननुवूत आकुलता उटती रहती थी। जैसे उस वयंकर सर्प ने उस्के वीतर गुसकर एक अचिन्त्य, सुप्त आवेश को जाग्रत कर दिया हो चिर विस्मृत के आवरण को चीरकर एक अवश प्रवृत्ति के लिये हृदय में विल वना दिया हो।

तमिल भाषी के उच्चारण में निम्न भिन्नता पाई जाती है—

खड़ी वोली 'ल' का उच्चारण मूर्धन्य ल के समान होता है।

"	ह	"	स्पष्ट नहीं हैं (यह ध्वनि तमिल में नहीं है)	
"	ड़	"	ड	के समान है
"	थ	"	त	"
"	ठ	"	ट	"
"	का	"	ग	"
"	त्य (नित्य में)		च्च (निच्च)	है
"	त्थ (पत्थर में)		त्त	है
"	क्ष (पक्षी में)		च्च (पच्ची)	है
"	ध (धोती, मधुर, में)		द (दोती, मदुर)	है
"	ख (खिसक)		क (किसक)	है
"	ज्ञ (अज्ञात)		ज्ज (अज्ज्ञात)	है
"	छ		च	है
"	क्ष		छ	है
"	भ (भावना में)		व	है
"	घ		ग	है

तमिल भाषी को हिन्दी वर्णों का परिनिष्ठित उच्चारण करने में जो कठिनाई पड़ती है उसका कारण यह है कि उनकी लिपि में हिन्दी (नागरी) लिपि के स्वर-वर्णों के अतिरिक्त (औ को छोड़कर) अवृत्तमुखी उ, ह्रस्व एँ, ऐं और ह्रस्व ओं भी हैं और व्यञ्जनों में हिन्दी कवर्ग के केवल क् और ङ, चवर्ग के केवल च् और ञ, टवर्ग के केवल ट् और ण् हैं। यह तमिल भाषी के उच्चारण से ज्ञात होता है पर श्री० वी० रा० जगन्नाथम के अनुसार तमिल में व, द्, ग्, ख्, ध्वनियाँ निर्विवाद रूप से विद्यमान हैं (गवेषणा, सितम्वर, ६४ पृष्ठ ८७), वर्त्स्य त्, फ् का उच्चारण तमिल में नहीं होता (वही) तथा अन्तस्थ में खड़ी वोली हिन्दी के य्, व् के अतिरिक्त वर्त्स्य र् भी है और वर्त्स्य, मूर्धन्य और तालव्य तीन 'ल' हैं। तालव्य श् शिष्ट तमिल भाषी ही उच्चरित करते हैं। ड़ ध्वनि तमिप (ल) में नहीं है।

इसी प्रकार उसमें अरबी-फारसी क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियाँ भी नहीं हैं। तमिल व्यंञ्जन-ध्वनियों को स्पष्ट करने के लिए नीचे गवेषणा के उसी अंक से तालिका दी जाती है—

व्यंजन	द्वयोष्ठ्य	दन्त्योष्ठ्य	दन्त्य	वर्त्स्य	मूर्धन्य	तालुवर्त्स्य	तालव्य	कण्ठ्य
स्पर्श	प व	त द	ट ड				च ज	क ग
अनुनासिक	म		न्	न	ण		ञ	ङ
पार्श्विक				ल	ल्			
लुंठित				र				
उत्क्षिप्त				ड़				
संघर्षी	ब़	व़	द	स		श क़	ख	ग
संघर्ष हीन और अर्धस्वर				ष़			य	

प् त् क् शब्दारम्भ में ही आते हैं। च् शब्दारम्भ में नहीं आता—शब्दारम्भ में इसका उच्चारण स हो जाता है।

तमिष में शब्द के स्त्री-पुरुष—अर्थ पर लिंग का बोध होता है। हिन्दी में लिंग सर्वथा अर्थ पर आधारित नहीं है। मूछ, पुरुष के ऊपरी अधर पर उगने वाले बालों की संज्ञा जिसे पुल्लिग होना चाहिये था, पर वह स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार पुरुष की दाढ़ी भी स्त्रीलिंग है पर स्त्री कालहँगा पुलिंग है। हिन्दी व्याकरण के आकारान्त शब्द प्रायः पुलिंग और ईकारान्त स्त्रीलिंग होते हैं पर यह निरपवाद नियम नहीं है—जैसे, लहँगा, माया, शाला, बाधा आदि आकारान्त होते हुए भी स्त्रीलिंग हैं। इसी प्रकार दही, माली, हलवाई, नाई, धोबी आदि ईकारान्त होते हुए भी पुल्लिग हैं। अतः शब्द के लिंग का निर्धारण तो भाषा के अभ्यास तथा अध्ययन से ही हो सकता है। अतः तमिष हिन्दी में लिंग का भेद स्वाभाविक है और यह भेद स्वयं हिन्दी क्षेत्रियों की भाषा में भी मिलता है। दही पूर्व क्षेत्र में खट्टी (स्त्रीलिंग) है और पश्चिम में खट्टा (पुल्लिग) तमिष् भाषी सदा कर्ता के लिंग के अनुसार क्रिया-रूप रखने का अभ्यासी होने से परिनिष्ठित हिन्दी में सकर्मक क्रिया का रूप भी कर्ता के लिंग के साथ रख देता है—'मैंने पतंग देखी' को वह मैं या मैंने पतंग देखा, कहेगा। यह प्रमाद अहिन्दी भाषी से ही नहीं, हिन्दी-भाषी से भी हो जाता है। वह भी मैं या मैंने पतंग देखा कहा जाता है। पंजाबी हिन्दी में भी क़हीं-कहीं इसी प्रकार के प्रयोग मिलते हैं यथा 'मैंने देखा' के स्थान पर 'मैं देखा'।

तेलुगु हिंदी

तेलुगु द्रविड़ भाषा परिवार की एक समृद्ध भाषा है। 'तेलुगु' की उत्पत्ति 'त्रिलिंग' से हुई है। यद्यपि ए० वी० कैम्पवैल इस व्युत्पत्ति को स्वीकार करता है पर ब्राउन इसे कल्पित ही मानता है। तेलुगु का स्थान द्राविड़भाषाओं में तमिल के बाद ही आता है। इसका क्षेत्र वर्तमान आंध्र प्रान्त है और उसके सीमावर्ती भाग। यह माधुर्य की दृष्टि से भारत की इतालवी भाषा कही जाती है। आंध्र प्रान्त उत्तर में उड़िया और हिन्दी, दक्षिण में तमिल, पश्चिम में मराठी और कन्नड़ भाषी प्रान्तों से घिरा हुआ है। इसके बोलने वालों की संख्या आंध्र में सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार ३,१३,७२९९८ है। सन् १९६१ की जनगणनानुसार मैसूर में लगभग १,१०,०००, मध्यप्रदेश में १,३०,३४३, तमिलनाद में ३५,००,९००, बम्बई प्रदेश (जिसमें महाराष्ट्र तथा गुजरात भी सम्मिलित थे) में १,६३,०००, विहार जमशेदपुर टाटानगर में १५००० तथा विदेशों में—बर्मा में १,६०,६४०, फिजी द्वीप समूह में ८०००, दक्षिण अफ्रीका में २,१६,६२८ तथा मारीशश द्वीप समूह में १०,००० थी। यह संख्या सन् १९६६ में निश्चय ही लगभग दुगुनी-तिगुनी हो गई होगी। तेलुगु में संस्कृत के लगभग सत्तर प्रतिशत शब्द हैं। मध्यकाल में मुसलमानी सम्पर्क से अरवी-फारसी शब्द भी पर्याप्त संख्या में प्रचलित रहे। तेलुगु भाषी अपनी भाषा की संस्कृत शब्दावली का कुछ अपवादों को छोड़कर (क्योंकि तेलुगु में कुछ संस्कृत शब्दों के वे ही अर्थ नहीं हैं जो संस्कृत में हैं, उनमें कुछ परिवर्तन आ गया है) हिन्दी में सहज ही प्रयोग कर सकता है। उसकी व्यवहार-भाषा हिन्दी है। यों सीमावर्ती क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषा भी द्वितीय भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। तेलुगु भाषी के लिए हिन्दी अपरिचित भाषा नहीं है। उसके वहुत से भाग मुसलमानों के प्रत्याशासन में थे इसलिए वहाँ दक्षिण में अरवी, फारसी और स्थानीय शब्दावली मिश्रित एक भाषा का प्रचलन हो गया था। यह खिचड़ी भाषा दक्खिनी हिन्दी कहलाई। आधुनिक युग में निज़ामशाही ने उर्दू की अनिवार्य शिक्षा पर बल दिया—उसे विश्वविद्यालय का माध्यम बना कर उसके प्रचार में अधिक उत्साह दिखाया। जिस प्रकार कई संस्कृत शब्दों का

तेलुगु में अर्थ-परिवर्तन हो गया है। उसी प्रकार अरबी-फारसी शब्दों का भी अर्थ बदल गया है। तूफान—तुपानु का अर्थ झंझावात नहीं, प्रलय है। जलसा का मौज मारना या मेल है, मालिष केवल घोड़ों की रगड़ का अर्थ देती है, इसी प्रकार आवेदन—बेचैनी, आलोचना—सोचना, उपन्यास—व्याख्यान, राष्ट्र—प्रान्त के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

हम नीचे साधु हिन्दी का और उसका तेलुगु भाषी द्वारा उच्चरित रूप दे रहे हैं।

साधु (परिनिष्ठित) हिन्दी गद्यांश

कला सुबह के समय फुलवाड़ी में फूल बीनने गई थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना और ठाकुर जी के प्रसाद की माला बनाना उसका नित्य का काम था। वह फुलवाड़ी के बीच में पत्थर के छोटे से चबूतरे पर बैठी जूही की माला गूंथ रही थी। आम के बौरों की सुगंध से सारा बाग महक रहा था। पक्षी कलरव कर रहे थे। प्रभात की कोमल स्वर्ण आभा उसके सुन्दर अरुण मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई थी। उसके माथे से धोती खिसक गई थी और दो एक लटें जूड़े से निकलकर वायु में दौड़ रही थीं। उसके अन्तःस्तल में भी रह-रहकर एक अज्ञात लहर-सी दौड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सबसे वेगवती थी, उसमें एक तीव्रता और व्याकुलता मिली थी। कला के मन का संसार केवल थोड़ी सी किशोर स्मृतियों का बना था। उसके बाबा का मधुर व्यवहार, माँ का लाड़ प्यार, तीर्थ यात्रियों के कुछ क्षीण संस्मरण, आस-पास के कुछ पेड़ फुलवाड़ी के फूल-पौधे और उसका प्यारा हिर-नौटा कानू। इन्हीं के सम्बन्ध की कुछ बातें, कुछ आकार-प्रकार कुछ रूप-रंग, कुछ वार्तालाप, कुछ सुखद-दुखद भावनाएँ उसके भीतर बार-बार घूम-फिर कर उदय और अस्त होती रहती थीं। पर पिछली साँप वाली घटना के बाद उसके अन्तः-करण में एक अज्ञात अननुभूत आकुलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकर सर्प ने उसके भीतर घुसकर एक अचिन्त्य, सुप्त आवेश को जाग्रत कर दिया हो, चिर-विस्मृत के आवरण को चीर कर एक अवश-प्रवृत्ति के लिए हृदय में बिल बना दिया हो।

तेलुगुभाषी द्वारा उच्चरित रूप

कळा सुबः के समय फुलवाडी में फूल बीनने गयी थी। माँ की पूजा के लिये फूल चुनना आउर ठाकूर जी के प्रसाद की माला बनाना उस्का निच्च का काम

था। वह फुलवाडी के बीच में पत्थर के छोटे से चवूत्रे पर बैठी जूही की माला गूंथ रही थी। आम के वाउरों की सुगंध से सारा वाग महक रहा था। पक्षी कल-रव कर रहे थे। प्रभात की कोमल स्वर्ण आभा उस्के सुन्दर अरुण मुख पर पड कर उसी में लीन हो गयी थी। उस्के माथे से धोती खिसक गयी थी आउर दो येक लटें जूडे से निकल कर वायू में दाउड़ रही थीं। उस्के अन्तस्तल में भी रह-रहकर एक अज्ञात लहर-सी दाउड पडती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सवसे वेगवती थी, उसमें एक तीव्रता और व्याकुलता मिली थी। कला के मन का संसार केवल थोड़ी सी किशोर स्मृतियों का वना था। उसके वावा का मधुर व्यवहार, माँ का लाड प्यार, तीर्थ यत्रियों के कुछ क्षीण संस्मरण, आसपास के कुछ पेड, फुलवाड़ी के फूल पौधे और उस्का प्यारा हिरनाउटा कानू। इन्हीं के संवंध की कुछ वातें, कुछ आकार-प्रकार, कुछ रूप-रंग, कुछ वार्तालाप, कुछ सुखद दुःखद भावनाएँ उसके भीतर वार-वार घूम-फिरकर उदय और अस्त होती रहती थीं। पर पिछली साँप वाली घटना के वाद उसके अन्तःकरण में एक अज्ञातमय अननुभूत आकुलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकर सर्प ने उसके भीतर घुसकर एक अचिन्त्य सुप्त आवेश को जाग्रत कर दिया हो चिर विस्मृत के आवरण को चीरकर एक अवश-प्रवृत्ति के लिए हृदय में विल वना दिया हो।

जिन तेलुगु भाषी श्री नरसिंहा चार्य ने उपर्युक्त उच्चारण किया उनकी आयु २६ वर्ष की है और उन्होंने वी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है। उनके उच्चारण में इस प्रकार की भिन्नता पाई गई—

(१) ला (कला में) का उच्चारण मूर्धन्य ळ के सदृश होता है।

(२) अल्पप्राण व ध्वनि के पश्चात आने वाले 'ह' का उच्चारण स्पष्ट नहीं होता—जैसे, सुवह—सुवः

(३) 'ड' और 'ड़' में भेद नहीं रहता।

(४) 'औ' का उच्चारण पूर्ण 'आऊ' होता है।

(५) दीर्घ आ के पश्चात् उकारान्त व्यंजन का उ दीर्घ हो जाता है—जैसे, ठाकुर—ठाकूर।

(६) शब्द के मध्यवर्ती दन्त्य स का उच्चारण हलन्त हो जाता है।

उदाहरण, उसका—उस्का

[हिन्दी शब्दों में भी यही प्रवृत्ति वढ़ रही है]

(७) त् के स्थान पर च का आगम पाया जाता है। यथा, निच्च।

(८) त् के पश्चात् आने वाले संयुक्त य का भी च में परिवर्तन हो जाता है।

(९) शब्द में उकारान्त के पश्चात् आने वाले त र वर्ण 'त्र' में परिवर्तित हो जाते है।

(१०) शब्दान्त ह्रस्व उ ध्वनि यदि आकारान्त वर्ण के पश्चात् आती है तो वह दीर्घ हो जाती है। यथा वायु—वायू।

(११) ज्ञ का उच्चारण 'ज्ञ' के सदृश होता है।

(खड़ी बोली में 'ग्यँ' होता है)

केरली हिंदी

स्वाधीनतापूर्व त्रावणकोर और कोचीन रियासतों को मिलाकर केरल-राज्य की स्थापना की गई है। इस भाग को अशोक के ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के एक शिलालेख में भी 'केरल' कहा गया है (केरल-पुत्र)। मल्य पर्वतश्रेणी के मध्य वसने वाले केरलियों की भाषा 'मलयालम' कहलाने लगी। इसे बोलने वालों की संख्या सत्तर लाख के लगभग है।

मलयालम यद्यपि तमिष् अथवा तमिल परिवार की भाषा है तो भी वह उससे सदियों पूर्व पृथक होकर स्वतन्त्र प्रवृत्ति के साथ समृद्ध हो रही है। तमिल के समान संस्कृत शब्दों के आदान में उसने संकोच नहीं किया। उसमें संस्कृत, प्राकृत के तत्सम-तद्भव शब्दों की संख्या लगभग ७० प्रतिशत है। उसके समुद्री किनारे पर अरब व्यापारियों के आवागमन के कारण अरबी शब्दों का भी प्रवेश हो गया है और मुगलों के प्रभाव से उसमें फारसी शब्द भी सम्मिलित हो गये हैं। अंग्रेजी शब्दावली का सिंचन भी अन्य भारतीय भाषाओं के समान है। मलयालम ने हिन्दी शब्दों को भी आत्मसात करने का प्रयत्न किया है। यों तो केरल में संगीत और सन्त-साहित्य के प्रति सम्मान होने से हिन्दी सम्भ्रान्त परिवारों में वर्षों पूर्व प्रविष्ट हो चुकी थी परन्तु महात्मा गांधी के स्वराज्य-आन्दोलन में हिन्दी को जब राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया तब केरलवासियों ने उसको सहर्ष अपनाने का संकल्प किया। आज केरल में हिन्दी स्कूलों में कुछ श्रेणी तक अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है। अतः उसके बोलने-समझने वालों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। केरल में मातृभाषा के अतिरिक्त देशभाषाओं में हिन्दी ही व्यवहार-भाषा बनी हुई है। मलयाली की व्यवहारिक हिन्दी का रूप प्रस्तुत करने का यहाँ प्रयत्न किया गया है। साधु हिन्दी के एक अंश को मलयालम भाषी सत्ताईस वर्षीय जॉन से पढ़वाया गया है और उसके आधार पर कतिपय निष्कर्ष निकाले गये हैं।

परिनिष्ठित हिन्दी का अंश

कला सुबह के समय फुलवाड़ी में फूल बीनने गई थी। माँ की पूजा के लिए

फूल चुनना और ठाकुर जी के प्रसाद की माला बनाना उसका नित्य का काम था। वह फुलवाड़ी के बीच में पत्थर के छोटे से चबूतरे पर बैठी जूही की माला गूँथ रही थी। आम के बौरों की सुगन्ध से सारा बाग़ महक रहा था। पक्षी कलरव कर रहे थे। प्रभात की कोमल स्वर्ण आभा उसके सुन्दर अरुण मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई थी। उसके माथे से धोती खिसक गई थी और दो एक लटें जूड़े से निकल कर वायु में दौड़ रही थीं। उसके अन्तस्तल में भी रहकर एक अज्ञात लहर-सी दौड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सबसे वेगवती थी, उसमें एक तीव्रता और व्याकुलता मिली थी। कला के मन का संसार केवल थोड़ी-सी किशोर स्मृतियों का बना था। उसके बाबा का मधुर व्यवहार, माँ का लाड़-प्यार, तीर्थ यात्रियों के कुछ क्षीण संस्मरण, आस-पास के कुछ पेड़, फुलवाड़ी के फूल-पौधे और उसका प्यारा हिरनौटा कानू।

मळयालम भाषी द्वारा उच्चरित रूप

कळा सुबह के समै फुलवाडी में फूल बिनने गयी थी। माम् की पूजा के लिए फूल चुनना और टागुर जी के प्रसाद की माला बनाना उसका नित्य का काम था। वह फुलवाड़ी के बीच में पत्तर के छोटे से चबूदरे पर बैठी जूही की माला गूंथ रही थी। आम के बौरों की सुगन्ध से सारा बाग़ महक रहा दा। पक्षी कलरव कर रहे थे। प्रभाद की कोमल स्वर्ण आभा उसके सुन्दर अरुण मुख पर पड कर उसी में लीन हो गयी थी। उसके माथे से धोती खिसक गई थी और दो येक लटेम् जूडे से निकल कर वायू में दौड रही थी। उस्के अंदस्तल में भी रह-रहकर एक अज्ञात लहर सी दौड पड़ती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सबसे वेगवदी थी उसमें एक तीव्रदा और व्यागुलदा मिली थी। कळा के मन का संसार केवल थोड़ी-सी किशोर स्मृतियों का बना था। उसके बाबा का मधुर व्यवहार, माम् का लाड प्यार, तीर्थ यात्रियों के कुछ क्षीण संस्मरण, आस-पास के कुछ पेड़, फुलवाडी के फूल-पौदे और उसका प्यारा। हिरनौटा कानू। इन्हीं के संबंद की कुच बातें, कुच आकार-प्रकार, कुच रूप-रंग, कुच वार्तालाप, कुच सुखद-दुखद भावनाएँ उसके भीतर बार-बार घूम फिरकर उदय और अस्त होती रहती थीं। पर पिछली साँप वाली घटना के बाद उसके अंद:करण में एक अज्ञदमय अननुभूत आगुलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकर सर्प ने उसके भीतर घुसकर एक अचिन्त्य, सुप्त आवेश को जाग्रत कर दिया हो, चिर विस्मृत के आवरण को चीरकर एक अवश प्रवृत्ति के लिये हृदय में बिल बेना दिया हो।

निष्कर्ष

१. ल का उच्चारण मूर्धन्य ळ के समान होता है।
२. म के पश्चात् शब्दान्त का 'य' लुप्त होकर म को ऐकारान्त कर देता है। यथा, समय—समै।
३. त्रिवर्णी एकारान्त शब्द का दीर्घ ईकारान्त प्रारम्भिक वर्ण ह्रस्व इकार में परिवर्तित हो जाता है।
४. ठ का ट में परिवर्तन (यथा—टागुर) हो जाता है।
५. क् का ग् में " (ठाकुर—टागुर) "।
६. थ् का त् में " (पत्थर—पत्तर) "।
७. त् का द् में " (चवूतरा—चवूदरा) "।
८. ड़ का ड में रूपान्तर (पड़ना—पडना) "।
९. शब्द के ह्रस्व उकारान्त का दीर्घ ऊकारान्त में परिवर्तन हो जाता है जैसे, वायु—वायू।
१०. ध् का द् में परिवर्तन (पौधे—पौदे) हो जाता है।
११. छ का च् में " (कुछ—कुच)
१२. ज्ञ का 'ज्ञ' की तरह उच्चारण होता है—जैसे, अज्ञात=अज्ञात।
१३. माँ (शब्द के ऊपर अनुसार का उच्चारण प्रायः म् के समान होता है यथा, लटें—लटेम्), माँ=माम।
१४. व से आरम्भ होने वाले शब्द का व ह्रस्व एँ के समान उच्चरित होता है। यथा, बना=वेना।

केरली अथवा मलयालम और हिन्दी की ध्वनि-प्रणाली

मलयालम-स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, एँ, ए, ओ, ओॅ, औ, ऋ।

हिन्दी-स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ऋ (पर उच्चरित रूप 'रि' हो गया है)।

टिप्पणी—मलयालम में ए और औ की ह्रस्व ध्वनियाँ लिपि में निश्चित कर दी गई है। नागरी (हिन्दी) लिपि में ये यद्यपि निश्चित नही है तो भी हिन्दी भाषी प्रायः औ का उच्चारण ह्रस्व ओ के समान ही करता है। मलयालम भाषी अपनी मातृभाषा की ह्रस्व ए और ओ ध्वनियों से अभ्यस्त रहने के कारण हिन्दी की दीर्घ ए और दीर्घ औ ध्वनि का ह्रस्व उच्चारण करते हैं।

मलयालम व्यञ्जन—मलयालम व्यञ्जनों में हिन्दी के वाह्य व्यञ्जनों के पाँच क्, च्, ट्, त् और प, वर्ग के स्पर्श वर्णो और चार म, र, ल, व अन्तस्थ तथा श, ष, स ऊष्म ध्वनियों के अतिरिक्त ऩ क़ ऱ और र ध्वनियाँ और है। हिन्दी में मलयालम की ष़ ध्वनि भा नहीं है।

ब, र, ल, ग, ह, ज व्यञ्जन जब शब्दारम्भ में आते हैं तब उनकी अ ध्वनि ह्रस्व ए में परिवर्तित हो जाती है। यथा, ब्रल—बे॑ल, रथ—रे॑थ, लड़—ले॑ड़, गप—गे॑प, हस—हे॑स, जल—जे॑ल।

मलयालम में शब्दों के अन्तिम व्यञ्जन का पूर्ण रूप से उच्चारण होता है। उसमें मिली अकार ध्वनि का स्पष्ट उच्चारण होता है। यथा राम्+अ=राम का उच्चारण मलयालम भाषी राम्—अ स्वभावतः करता है। हिन्दी भाषी म का हलन्त (म्) उच्चारण करता है।

मलयालम भाषी साधु हिन्दी लिखते समय अपनी मातृभाषा की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। वह यदि मित्र को पत्र में स्नेहित ! या स्नेहिन् ! सम्बोधित करे तो आश्चर्य क्या है ! आशा है, आप सानन्द होंगे न लिखकर झट वह लिख सकता है—आशा है, आप ससुख होंगे। एक पत्र में उसने घर में सबसे स्नेह कहिए के स्थान पर घर में सबों से 'स्नेहपूर्व पूछताछ कहिए' लिखा था।

मलयालम तथा दक्षिण की अन्य भाषाओं में भी क्रिया का रूप कर्ता के लिंग-वचन के अनुसार परिवर्तित नहीं होता। इससे व्यावहारिक हिन्दी में मलयालम भाषी हिन्दी बोलते समय 'आदमी बैठा है' के समान ही 'औरत बैठा है' बोला जाता है। 'वे जाते हैं' के स्थान अर 'वे जाता है' कहा जाता है। कारक-चिह्नों के प्रयोग में मलयालम-भाषी प्रमाद कर सकता है। कर्ता कारक 'ने' का प्रयोग तो कई भाषा-भाषियों का सर चकरा देता है। मलयालम में कर्ता कारक की कोई विभक्ति न होने से वह हिन्दी में भी उसका बहिष्कार चाहता है। सम्बन्ध कारक का, के, की के प्रयोग भी ग़लत हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, आपके कितने भाई हैं (साधु हिन्दी), आपको कितने भाई हैं (मलयाली हिन्दी)।

मलयाली सम्बन्ध वाचक 'के' के स्थान पर कर्म वाचक 'को' का प्रयोग करता है। मलयालम भाषी ही नहीं, अन्य कई अहिन्दी भाषी सम्बन्ध वाचक 'के' के स्थान पर 'को' का प्रयोग करते हैं। राम के दो हाथ हैं के स्थान पर मराठी भाषी सहज ही 'राम को दो हाथ हैं'—कह जायगा।

मलयालम में हिन्दी के समान विशेष्य का लिंग विशेषण के लिंग के अनुसार रूप-परिवर्तन नहीं करता। इसीलिए मलयाली अच्छी लड़की को अच्छा लड़की कह जाता है।

टिप्पणी—हिन्दी में भी सभी विशेष्य शब्द विशेषण के अनुसार लिंग परिवर्तन नहीं करते। हिन्दी में सुन्दरी लड़की और सुन्दर लड़की—दोनों रूप साधु हैं।

हिन्दी में दो ही लिंग-पुंल्लिग तथा स्त्रीलिंग है, मलयालम में संस्कृत, गुजराती तथा मराठी के समान नपुंसक लिंग भी है। हिन्दी में शब्दों के लिंग अभ्यास से ही जाने जाते हैं उन्हें सीखने का कोई राजमार्ग नहीं है।

बंगाली हिंदी

बँगला आर्य भाषा परिवार की अपभ्रंश-अवहट्ट भाषा से विकसित हुई है। बँगला अपने विकास की दो श्रेणियाँ पार कर चुकी है। डॉ० सुकुमार सेन के अनुसार यह इस समय विकास की तृतीयावस्था में है। बँगला का प्राचीन रूप लगभग सन् ९५० से १३५० ई० तक देखा जा सकता है। मध्यकालीन बँगला सन् १३५० से १८०० तक और आधुनिक बँगला १८०० से विकासशील होती है। मध्यकालीन बँगला की भी दो श्रेणियाँ पूर्व मध्यकालीन और पश्च मध्यकालीन बँगला जिसका रूप क्रमशः १३५० से १५०० और १५०० से १८०० ई० सन् तक देखा जा सकता है। मध्यकालीन बँगला वैष्णव भक्ति-साहित्य से भरपूर है और ब्रजबुलि (ब्रज की बोली) से आच्छादित है। स्वयं रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी भानुसिंह के नाम से ब्रजबुली में मधुर गीतों की रचना की है। प्राचीनतम बँगला चर्या-गीतों में सुरक्षित है। चर्यागीतों में अवहट्ट भाषा का प्रभाव स्पष्ट है। मध्यकालीन बँगला में संस्कृत शब्दों का आदान बराबर होता रहा है। पर जब बंगाल अकबर के साम्राज्य का अङ्ग बन गया तब अरबी फारसी शब्दों का भी उसमें प्रवेश होने लगा। उसके पश्चात् पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अँग्रेजों की भाषाओं ने उसे प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। आधुनिक बँगला के दो रूप हैं। एक साधुभाषा (साहित्यिक) कहलाता है और दूसरा चलित 'भाषा' (व्यवहार-भाषा) कहलाता है। मध्ययुग में बँगला में तीन भाषाओं का प्रचलन था। एक संस्कृत, दूसरी बँगला, तीसरी हिन्दी (उसका ब्रजरूप साहित्य में व्यवहृत होता था)। वर्तमानकाल में जब खड़ी बोली ने देश-भाषा या व्यवहार-भाषा का स्थान ले लिया तब खड़ी बोली हिन्दी व्यवहार-भाषा बन गई। बँगला भाषी खड़ी बोली का किस प्रकार उच्चारण करता है, वह साधु हिन्दी के अंश के बँगला भाषी उच्चरित रूप से स्पष्ट हो जायगा।

परिनिष्ठित हिन्दी का गद्यांश

कला सुबह के समय फुलवाड़ी में फूल बीनने गई थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना और ठाकुरजी के प्रसाद की माला बनाना उसका नित्य का काम

था। वह फुलवाड़ी के वीच में पत्थर के छोटे से चबूतरे पर बैठी जूही की माला गूँथ रही थी। आम के वौरों की सुगन्ध से सारा वाग महक रहा था। पक्षी कल-रव कर रहे थे। प्रभात की कोमल स्वर्ण आभा उसके सुन्दर अरुण मुख पर पड़कर उसी में लीन हो गई थी। उसके माथे से धोती खिसक गई थी और दो एक लटें जूड़े से निकलकर वायु में दौड़ रही थीं। उसके अन्तस्तल में भी रह-रहकर एक अज्ञात लहर-सी दौड़ पड़ती थी। अपनी उस चंचल भावना का रहस्य उसे मालूम न था, पर उसके हृदय में वही सबसे वेगवती थी, उसमें एक तीव्रता और व्याकु-लता मिली थी। कला के मन का संसार केवल थोड़ी-सी किशोर स्मृतियों का वना था। उसके बावा का मधुर व्यवहार, माँ का लाड़-प्यार, तीर्थ-यात्रियों के कुछ क्षीण संस्मरण आस-पास के कुछ पेड़, फुलवाड़ी के फूल-पौधे और उसका प्यारा हिरनौटा कानू। इन्हीं के सम्बन्ध की कुछ बातें, कुछ आकार-प्रकार कुछ रूप-रंग, कुछ वार्तालाप, कुछ सुखद-दुःखद भावनाएँ उसके भीतर वार-वार घूम फिरकर उदय और अस्त होती रहती थीं। पर पिछली साँप वाली घटना के वाद उसके अन्तःकरण में एक अज्ञातमय अननुभूत आकुलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकर सर्प ने उसके भीतर घुसकर एक अचिन्त्य, सुप्त आवेश को जागृत कर दिया हो, चिर विस्मृति के आवरण को चीरकर एक अवश-प्रवृत्ति के लिए हृदय में विल वना दिया हो।

बँगला भाषी द्वारा उच्चरित रूप

कॉला शूवा के षेॉमय फूलबाड़ी में फूल वीनने गई थी। माँ की पूजा के लिए फूल चुनना आर ठाकुर जी के प्रषाद की माला वनाना उसका नित्त का काम था। वो फूलवाड़ी के बीच में पत्थर के छोॅट्टे से चबूतरे पर वैठी जूही की माला गूँथ रही थी। आम के वॉरों की शुगंध से पारो बाग़ मेॉहक रहा था। पोॅक्खी कोलरव कर रहे थे। प्रभात की कोमल सोर्न आभा उसके शूंदर ओरुन मुख पर पोॅड़कर उसी में लीन हो गई थी। उसके माथे से धोती खिषक गई थी और दो एक लटें जूड़े से निकलकर वायु में दौड़ रही थीं। उसके ओंतरतल में भी रोह रोह कर एक्क ओग्यात लोॅहर सी दौड़ पड़ती थी। ओपनी उस चोंचल भावना का रोहस्य उसे मालूम न था ; पर उसके हृदय में बही सबसे वेगवती थी। कोॅला के मोॅन का शंशार केवल थोड़ी सी किशोर स्मृतियों का वना था। उसके वावा का मोधुर वेवोहार, माँ का लाड-प्यार, तीर्थ जात्रियों के कुछ खीन संस्मरन, आश-पाश के कुछ पेड़, फूलवाड़ी के फूलपौधे और उसका प्यारा हिरनौटा कानू। इन्नी के संवंध की कुछ वातें, कुछ आकार-प्रकार, कुछ रूप-रंग कुछ वार्तालाप, कुछ शुखद-दुखद भावनाएँ उसके भीतर वार-वार घून फिरकर उदय आर अस्त होती रहती थीं। पर पिछली पांपवाली घटना के वाद उसके ओॅन्तोॅकरन में एक अग्यातमय ओॅननु-

भूत आकुलता उठती रहती थी जैसे उस भयंकर शर्प ने उसके भीतर घुशकर एक अचिन्त, शूप्त आवेश को जाग्रत कर दिया हो, चिर बिश्मृत के आवोरण को चीर कर एक औवश-प्रवृत्ति के लिए हृदय में विल वना दिया हो।

निष्कर्ष

वँगला भाषी जब हिन्दी वोलता है तव उसके उच्चारण में निम्न विशेपता पाई जाती है—

अ का उच्चारण अर्ध ऑ के सदृश होता है।

यथा कला ··कॉला, महक···मोँहक दन्त्य स् के स्थान पर तालव्य श का आगम होता है।

यथा सुवह···शूवा।

शव्दान्त 'ह' का उच्चारण लुप्त होकर पूर्ववर्ती वर्ण दीर्घ हो जाता है।

यथा सुवह···शूवा।

शव्दारम्भ का ह्रस्व उकार प्रायः दीर्घ उकार में वदल जाता है।

यथा सुवह···शूवा।

व के स्थान पर 'व' का आगम होता है। औ के स्थान पर आ का आगम देखा जाता है—यथा और···आर।

शव्दान्त य का लोप और पूर्ववर्ती अल्पप्राण ध्वनि का द्वित्व में परिवर्तन पाया जाता है। यथा नित्य···नित्त।

शव्दारम्भ में संयुक्त य ध्वनि लुप्त होकर पूर्ववर्ती वर्ण को एकारान्त में वदल देती है। यथा व्यवहार···वेवोहार।

सामान्यतया य का उच्चारण ज के समान होता है।

यथा तीर्थयात्री ··तीर्थजात्री।

क्ष का क्ख में परिवर्तन सुनाई पड़ता है और कहीं केवल ख में।

यथा पक्षी···पॉक्खी तथा क्षीण···खीन।

'ण' का उच्चारण न होता है। यथा स्वर्ण···सोर्न, अरुण···ऑरुन।

'ज्ञ' का उच्चारण 'ग्य' की भाँति होता है। यथा अज्ञात···ऑग्यात।

छत्तीसगढ़ी खड़ी बोली का व्यवहृत रूप

अहिन्दी क्षेत्रों में व्यवहृत खड़ी बोली में ही विभिन्नता नहीं है, हिन्दी क्षेत्रों की खड़ी बोली में भी भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण के लिए हम पूर्वी हिन्दी के क्षेत्र छत्तीसगढ़ की खड़ी बोली का उदाहरण दे रहे हैं।

छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश के दक्षिणपूर्व का नाम है जिसमें दुर्ग, वस्तर, विलासपुर, सरगुजा और रायगढ़ जिले सम्मिलित हैं। दक्षिण कौशल भी इसी को कहा जाता है। दशरथ की महारानी कौशल्या संभवतः इसी जनपद की कन्या थीं। यद्यपि पुराणों में दक्षिण कोसल और उसके नरेशों का यत्र-तत्र उल्लेख है तो भी उसकी शृंखला इतिहास की ज्ञात तिथियों तथा घटनाक्रम के साथ जुड़ नहीं पाती। कुछ काल तक मौर्यों का यहाँ आधिपत्य रहा। मौर्य साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने के उपरान्त सातवाहन वाकाटक, गुप्त, नल, पाण्डु, कलचुरि और नागवंशियों ने राज्य किया और कला तथा साहित्य की उन्नति में योगदान दिया। अनुश्रुति है कि आदि कवि वाल्मीकि ने रायपुर के तुरतुरिया नामक स्थान में अपना आश्रम स्थापित किया था और वहीं रामायण की रचना की थी। प्राप्त उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि यहाँ संस्कृत और प्राकृत के अनेक कवि हो गए हैं। उनमें वहुतों के नामोल्लेख भर मिलते हैं। पुजारी पाली नामक स्थान के एक शिला लेख में नारायण कवि के 'रामाभ्युदय' काव्य ग्रंथ का उल्लेख है पर वह प्राप्य नहीं है। कलचुरी नरेशों ने कवियों को विशेष रूप से आश्रय प्रदान किया था।

इस क्षेत्र की व्यवहार-भाषा क्रमशः संस्कृत और प्राकृत रही है जो प्राप्त मुद्राओं, ताम्र-पटों तथा शिला-लेखों पर उत्कीर्ण लेखों से स्पष्ट है। वर्तमान देश-भाषाओं के उदय होने पर राजाओं के दान पत्रादि जनपदीय भाषा में अंकित किए जाते थे। संवत् १७९२ में कलचुरि राजा अमरसिंह का आरंग में प्राप्त ताम्रपत्र लेख इस प्रकार है।

प्रथम बाजू
श्री राम २
सही

पंक्ति

१. स्वस्ति श्री महाराजाधिराज
२. श्री महाराजा श्री राजा अमर
३. सिंघदेव एतौ ठाकुर नंदू तथा
४. घासी राइ कहँ कबूल पाटे लिपा
५. इ दीन्हे अस जो छीटा बूंदा ग
६. यारि मई मुअरि ई सब एकौ ना
७. देह एक विद्यमान देवान कोका
८. प्रसाद राइ तथा देवान मल्ल
९. साहि लिपे बाबू कासीराम कबूल
१०. पाट सही रायपुर वैठे लिषे
११. कार्तिक सुदि ७ कह सं० १७९२
१२. डोंगर पटहल तथा मसुराई प
१३. टईल तथा तपत सराफ लि० (लि०)
१४. पाई ले गए जब्ब नंदू घपत री
१५. उठिगए रहे तब ऐही कबू
१६. ल नह आए।
१७. इ कबूल के विद्यमान महंत श्री
१८. मानदास तथा श्रीमहाराज जकुया
१९. र ठाकुर श्री उदयसिंह तथा श्री म
२०. हारजकुमार लाला श्री कृष्ण
२१. ल सिंह तथा नासक प्रताप
२२. और मानी बाबू गुनानसिंह
२३. तथा ठाकुर कादूराइ तथा परिहा
२४. र रमारे लाल
२५. दुबे परनाइज लैवाई आने
२६. सही देवान कोका
२७. प्रसाद राइ के
२८. सही देवान मल्लसाहि के

कलचुरि राजाओं के समय व्यवहार-भाषा ऐसी पूर्वी हिन्दी रही है जिस पर खड़ी बोली का किंचित् प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अँग्रेजों के राज्यकाल में

क्षेत्रीय भाषाओं के स्थान पर क्रमशः खड़ी बोली व्यवहृत होने लगी थी। आज जिस रूप में वह वहाँ बोली जाती है उसकी कतिपय विशेषताओं का यहाँ निर्देश किया जाता है। छत्तीसगढ़-क्षेत्र उत्कल, आंध्र, बिहार और महाराष्ट्र से घिरा होने के कारण उसकी क्षेत्रीय बोली पर उड़िया, तेलुगु, बिहारी, खड़ी बोली, मराठी का प्रभाव स्वाभाविक है। जब छत्तीसगढ़ी भाषा-भाषी खड़ी बोली का व्यवहार करता है तब वह अपनी भाषा पर पड़े विभिन्न संस्कारों को सर्वथा विस्मृत नहीं कर पाता।

साधु खड़ी बोली और छत्तीसगढ़ी खड़ी बोली की ध्वनियों में कोई अन्तर नहीं है। व्याकरणिक भेद जो सुन पड़ता है, उसे नीचे दिया जाता है :—

खड़ी बोली का साधु रूप	**खड़ी बोली का छत्तीसगढ़ी रूप**
मैंने खाया है (पुल्लिग)	मैं खाया हूँ (पु०)
मैंने खाया है (स्त्री०)	मैं खाई हूँ (स्त्री०)

साहित्यिक खड़ी बोली में भूतकालिक सकर्मक क्रिया का रूप कर्ता के लिंग के अनुसार परिवर्तित नहीं होता। पर छत्तीसगढ़ी खड़ी बोली में परिवर्तित हो जाता है।

साधु खड़ी बोली	**छत्तीसगढ़ी खड़ी बोली**
रामचन्द्र ने धोखे में पड़कर मारीच राक्षस को स्वर्णमृग समझ लिया।	रामचन्द्र धोखे में पड़ कर मारीच राक्षस को स्वर्ण मृग समझ लिया।
कवि ने कविता को तीन भागों में विभाजित किया।	कवि कविता को तीन भागों में विभाजित किया।

साहित्यिक खड़ी बोली में जहाँ सकर्मक भूतकाल में कर्ता की 'ने' विभक्ति लगती है वहाँ छत्तीसगढ़ी खड़ी बोली में नहीं लगती। पूर्वी हिन्दी की अन्य बोलियों में भी यह प्रवृत्ति दीख पड़ती है।

खड़ी बोली का जो साहित्यिक रूप है वह बहुत कुछ व्याकरणिक नियमों से बँध जाने के कारण सामान्य जनता में व्यवहृत रूप से भिन्न हो गया है। वह उसके जन्मस्थान मेरठ, सहारनपुर, अम्बाला और दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्रों के प्रचलित रूप से भी भिन्न हो गया है। आज खड़ी बोली देश भाषा है जो देश के अधिकांश राज्यों में क्षेत्रीय भाषा के साथ-साथ दूसरी भाषा के रूप में बोली जाने लगी है। परिणामतः उसमें कुछ भिन्नता परिलक्षित होने लगी है। उस पर क्षेत्रीय प्रभाव पड़ता जाता है। छत्तीसगढ़ हिन्दी-क्षेत्र है। वहाँ पूर्वी हिन्दी (अवधी) का ही एक रूप बोला जाता है पर द्वितीय भाषा के रूप में खड़ी बोली भी बोली जाती है। बोलचाल में निम्न विशेषताएँ और लक्षित हुई :—

खड़ी बोली	छत्तीसगढ़ी खड़ी बोली
उन्हें रोता देखकर शिष्यों ने उनसे पूछा।	उन्हें रोता देख कर शिष्यों ने उनसे पूछे।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि जहाँ साहित्यिक खड़ी बोली में कर्ता के वचन के अनुसार भूतकाल क्रिया का वचन नहीं बदलता। वहाँ छत्तीसगढ़ी खड़ी बोली में कर्ता के वचन के अनुसार भूतकालिक क्रिया का वचन भी बदल जाता है।

साधु खड़ी बोली में जहाँ दो सम्बन्ध सूचक शब्द वाक्य में क्रमश: प्रयुक्त होते हैं वहाँ अन्तिम शब्द के साथ 'का' लगता है और उसके पूर्व शब्द के साथ 'के' लगता है परन्तु छत्तीसगढ़ी खड़ी बोली में दोनों स्थानों पर 'का' ही रहता है।

यथा—

साधु हिन्दी	छत्तीसगढ़ी खड़ी बोली हिन्दी
महात्मा के प्रिय मित्र का देहान्त हो गया।	महात्मा का प्रिय मित्र का देहन्त हो गया।

छत्तीसगढ़ी में इसलिए के स्थान पर 'करके' का प्रयोग प्रचलित है। यह प्रवृत्ति नागपुरी खड़ी बोली में भी पाई जाती है। यह मराठी के 'म्हणून' का हिन्दीकरण है।

यथा—

साधु हिन्दी	छत्तीसगढ़ी हिन्दी
मुझे सहसा स्टेशन जाना पड़ा इसलिए मैं आपसे निश्चित समय पर नहीं मिल सका।	मुझे सहसा स्टेशन जाना पड़ा करके मैं आपसे नहीं मिल सका।

भाषा का प्रवाह मन्द गति से निरन्तर बहता रहता है। उसमें काल की गति के अनुसार कई बोलियों का जल भरता रहता है पर इसमें मूल जल की मिठास कम होने के बजाय बढ़ती ही जाती है। आज वैयाकरण उसके जिस रूप को असाध्य कहता है, कौन कह सकता है कि वर्षों-सदियों बाद वे असाधु रूप ही 'साधु' नहीं बन जायेंगे?

हिंदी की समस्या

हिन्दी की अनेक समस्याओं में वर्तनी की समस्या कम महत्व की नहीं है। नागरी लिपि के समर्थन में हम प्रायः कहते रहते हैं कि वह सर्वथा वैज्ञानिक है। हम जिस प्रकार बोलते हैं उसी प्रकार लिखते भी हैं। पर यह कथन शत प्रतिशत सत्य नहीं हैं, इसीलिए अहिन्दी-भाषी का हिन्दी-वर्णों का उच्चारण कई बार अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है।

अकार स्वर की मात्रा—शब्दान्त के व्यंजन वर्णों में अकार स्वर उच्चरित नहीं होता, परन्तु लिखा सस्वर ही जाता है। उदाहरणार्थ जब हम बोलते है। 'काम' तब 'म' के संयुक्त 'अ' का उच्चारण नहीं करते, का+म्, परन्तु लिखते हैं का+म। त्रिवर्णीय शब्दों का वर्णान्त 'अ' कदाचित् उच्चरित हो जाता है। विशेषकर उस दशा में जब हम शब्द को संबोधन के रूप में प्रयुक्त करते हैं। संयुक्त व्यंजनान्त शब्दों में 'अ' ध्वनि स्पष्ट दिखाई देती है। यथा दुष्ट, रुष्ट, इष्ट, पिष्ट, सर्प, दर्प आदि।

यदि हम अनुच्चरित 'अ' को हलन्त कर लिखना प्रारम्भ कर दें तो हमारा लेखन अधिक वैज्ञानिक हो सकता है। परन्तु इससे अन्य गड़बड़ी पैदा हो सकती है। कुछ संस्कृत शब्दों को भी हलन्त लिखने की परिपाटी है। चार पाँच वर्णों वाले दीर्घान्त शब्द के क्रमशः द्वितीय और चतुर्थ वर्ण के 'अ' का उच्चारण भी हलन्त होता है। यथा—पकड़ना आवश्यकता आदि।

यदि हमें लिपि को सर्वथा वैज्ञानिक रूप प्रदान करना हो तो अनुच्चरित 'अ' को प्रत्येक स्थान पर हलन्त चिह्न सहित ही लिखना होगा।

'र्' का प्रयोग—हिन्दी में तीन 'र्' प्रचलित हैं—एक 'प्रकार' में 'प्' के नीचे लगा हुआ 'र्', दो 'धर्म' में 'म' पर 'रेफ्' के रूप में लग्न 'र्' और तीन 'रजनी' में प्रयुक्त 'र्'। पहले रूप का 'र्' वास्तव में 'प्' के पश्चात् उच्चरित होता है और दूसरे रूप का 'र्' 'म' के पूर्व उच्चरित होता है, पर लेखन में दोनों प्रयोगों में 'र्' की स्थिति अपने उच्चरित स्थानों के अनुरूप नहीं है। 'ट्', 'ड्' में 'र्' का चिह्न ‸ होता है। यथा—राष्ट्र, ड्राम।

'श्' के साथ 'र्' का योग होने पर उसका रूप 'श्र्' हो जाता है। 'र्' में ह्रस्व

'उ' और दीर्घ 'ऊ' की मात्रा अन्य वर्णो से भिन्न लगती है जैसे रुपया, रूप आदि।

ध्वनि लोप—हिन्दी में निम्न ध्वनियों का लोप हो गया है—ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ष्, ञ्। 'ऋ' के स्थान पर 'रि' ध्वनि आ गई है। (मराठी में यह ध्वनि 'रु' के समान उच्चरित होती है) पर अभी भी परिनिष्ठित हिन्दी में 'ऋ' का प्रयोग लेखन में प्रचलित है। 'ॠ' ऌ तथा ॡ ध्वनियाँ उच्चारण तथा लेखन दोनों में लुप्त हो गई हैं, अतः वर्णमाला में इन्हें स्थान देने की आवश्यकता नहीं रह गई। मूर्धन्य 'ष्' भी उच्चरित नहीं होता, लेखन में प्रयुक्त होता है। प्राचीन हिन्दी में यह 'ख्' के स्थान पर लिखा मिलता है।[1] 'ज्ञ' के स्थान 'ग्' ध्वनि का आगम हो गया है और 'ज्ञ' ध्वनि लुप्त हो गई है पर लेखन में 'ज्ञ्' प्रचलित है। ज्ञ का उच्चारण ज्ञ और ज्यं भी किया जाता है पर सामान्यतः 'ग्य' अधिक प्रचलित है।

ध्वनि-आगम—राजनीतिक और सामाजिक कारणों से परिनिष्ठित हिन्दी में कई ध्वनियों का आगम हो गया है। यथा फारसी, अरबी की 'ग़नीमत' 'क़यामत' में 'ग' और 'क' के नीचे नुक्ते से सूचित होने वाली ध्वनि। इसी तरह तर्ज़, मर्ज़, फ़र्ज़ के नीचे भी नुक्ते से सूचित होने वाली ध्वनि। हिन्दी की विभाषाओं और सामान्य बोलचाल में उर्दू अनभिज्ञ व्यक्ति इस ध्वनि का प्रयोग नहीं करते।[2] 'कॉलिज' आदि में अंग्रेजी की 'ऑ' ध्वनि का आगम हो गया है जो 'आ' और 'ओ' की मध्यवर्तिनी ध्वनि है।

वर्णमाला की 'ऐ' और 'औ' ध्वनि भी उच्चरित नहीं होती। इनके स्थान पर क्रमशः 'ए' 'ऐ' और 'ओ', 'औ' के बीचकी ध्वनि उच्चरित होती है परन्तु अहिंदी-भाषी जब पुस्तकों से हिन्दी सीखता है तब इन ध्वनियों का पूर्ण उच्चारण करता है जैसे 'औरत' को आऊरत, ऐनक को अ+ईनक। लिपि में मराठी के कुछ वर्णो

---

१. हरिश्चन्द्र और द्विवेदी काल के कुछ लेखक भी 'ख' के लिए 'ष' का प्रयोग करते थे। राजा रामपाल ने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को अपने ३ मई १९११ के एक पत्र में लिखा था, "मुझे षेद है कि उसके उत्तर में विलम्ब हुआ" नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९६९ अंक ४ पृ० ९६

२. अरबी-फारसी की क़, ख़, फ़, ज़, (वर्णो के नीचे लगे नुक्ते वाली) ध्वनियों का उच्चारण और लेखन अहिन्दी भाषी नहीं कर पाते—चाहकर भी नहीं क्योंकि वे हिन्दी भाषियों के मुख से ही इनका विकल्प में प्रयोग सुनकर संशय ग्रस्त हो जाते हैं। हिन्दी के संस्कारी विद्वान तक इनका असंस्कारी प्रयोग कर बैठते हैं। ऐसी स्थिति में परिनिष्ठित हिन्दी में इनके प्रयोगों का आग्रह नहीं होना चाहिए। मराठी में अनेक अरबी-फारसी शब्दों का समावेश हो गया है और वे मराठी में इतने प्रचलित हो गए हैं कि उनके तत्सम रूप का प्रयोग अशुद्ध मराठी माना जाता है। 'नुक्ते' तो बेचारे न जाने फातेहा पढ़ रहे हैं।

का आगम भी हो गया है जैसे क्त, ण् और अ। ये विकल्प रूप से लिखे जाते हैं।

अनुनासिक स्वर—अनुनासिक स्वर वर्ण के ऊपर विन्दी (ं) या अर्धचन्द्र (ँ) लगाकर प्रकट किये जाते है। यथा 'अं' अँ आदि। व्यजन वर्गो के अन्तिम वर्ण अनुनासिक वर्ण हैं जो क्रमशः 'ङ्' ञ्' 'ण्' न् तथा म्' हैं। इनमे 'ङ्' और 'ञ्' स्वतन्त्र रूप मे प्रयुक्त नहीं होते परन्तु 'म्' 'न्' तथा 'ण्' होते है यथा—दाम्, वन् तथा हरिण मे।

वर्गीय अक्षरो मे ऊपर पूर्ण अनुस्वार का चिह्न (ं) और विकल्प मे अनुनासिक वर्णों[1] का प्रयोग प्रचलित है यथा कङ्काल और कंकाल, अञ्चल और अंचल, अन्त और अत, अण्डा और अंडा और लैम्प और लैंप।[2] वर्गीय अक्षरों के अतिरिक्त य्, र्, ल्, व्, श्, स् ह् मे भी अनुनासिक चिह्नो का प्रयोग होता है। जैसे स्वय, रज, कलंक, वश, प्रशंसा, सभार, हस। परन्तु वर्णो पर पूर्ण अनुस्वार (ं) और अर्धानुस्वार (ँ) लगाने मे सावधानी की आवश्यकता है अन्यथा अर्थ में परिवर्तन होने की सम्भावना रहती है। जैसे हस मे 'ह' पर पूर्ण अनुस्वार होने से उसका अर्थ 'पक्षी' विशेष होता है और उस पर अर्धानुस्वार होने से उसका अर्थ हँस (Laugh) हो जायगा (पजाबी और कश्मीरी हिन्दी मे 'हँसी' को 'हन्सी' बोलते हैं—'ह' के पश्चात् 'न्' अनुनासिक वर्ण लगाते हैं।)

कामता प्रसाद गुरु की व्याकरण के अनुसार यदि अक्षर की मात्रा शिरोरेखा के ऊपर है तो पूर्ण अनुस्वार और यदि ऊपर नही है तो अर्धचन्द्र लगता है। यथा कहीं, ईंट, ऐंठना, ओंठ, अंग्रेजी, ऊँट, ऊँघना, मूँदना आदि।

यदि शब्द मे अनुनासिक वर्ण के पूर्व कोई अनुनासिक वर्ण आया हो तो पूर्ववर्ती अनुनासिक वर्ण अपने रूप मे ही लिखा जाता है, उसके स्थान पर अनुनासिक चिह्न नही लगाया जाता है। यथा—'सन्नाटा', 'सम्मति, वाङ्मय आदि।

परसर्गो का प्रयोग=परसर्गो को हिन्दी मे विभक्ति या कारक चिह्न भी कहते है। ये सम्बन्ध तत्त्व भी कहलाते है क्योकि इनसे वाक्य मे शब्दो का परस्पर

---

१. व्याकरणाचार्य किशोरीदास वाजपेयी तत्सम शब्दों में अनुनासिक वर्णो के प्रयोग के पक्ष में हैं किन्तु तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी शब्दों में अनुस्वार लगाने की छूट देते हैं।

   कुछ लेखक में हैं, के ऊपर भी अर्धचन्द्र लगाने को उपयुक्त समझते हैं किन्तु गुरु के व्याकरण-नियम के अनुसार अर्धचन्द्र लगाना उचित नहीं है, पूर्णानुस्वार लगाना ही शुद्ध वर्तनी-रूप है।

२. द्राविड़ भाषाओं में अनुस्वार के स्थान पर वर्ग का पंचम वर्ण ही प्रयुक्त होता है। मलयालम भाषी श्री विश्वनाथ के इस मत से हम सहमत हैं कि अनुस्वार और पंचम वर्ण का प्रयोग ऐच्छिक ही होना चाहिए। यथा वीरेंद्र और वीरेन्द्र। टंकन में प्रायः अनुस्वार ही टंकित होता है।

सम्बन्ध सूचित होता है। हिन्दी संसार में इस प्रश्न पर बराबर वाद-विवाद चलता रहा है कि परसर्गों को संज्ञा और सर्वनाम शब्दों के साथ मिलाकर लिखा जाना चाहिए अथवा उन्हें उनसे पृथक् ही रखना चाहिये। एकमत संज्ञा शब्दों के साथ परसर्ग पृथक् लिखने परन्तु सर्वनाम शब्दों के साथ मिलाकर लिखने के पक्ष में है। दूसरा मत उन्हें संज्ञा और सर्वनाम दोनों शब्दों से पृथक् लिखने के पक्ष में है। क्योंकि हिन्दी की प्रकृति विश्लेषणात्मक है, इसलिए परसर्गों का पृथक् लिखा जाना ही अधिक वैज्ञानिक है। भारत सरकार ने वर्तनी की समस्या पर जो निश्चय किया है, वह प्रथम मत का पोषक है परन्तु हिन्दी के सम सामयिक साहित्य में इनके प्रयोग में स्वच्छन्दता ही दिखलाई देती है।

हिन्दी के कुछ लेखक हिन्दी शब्दों के समस्त रूपों को संस्कृत के सन्धि नियमों के अनुसार सिद्ध घोषित करना चाहते हैं। डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन ने, 'हिन्दी भाषा अतीत और वर्तमान' के पृष्ठ ४६ पर अपना मत निम्न शब्दों में व्यक्त किया है, "हिन्दी में छन्द, मन और यश शब्द प्रयुक्त होते हैं किन्तु इनके साथ दूसरे शब्द मिलाकर जब समस्त पद प्रयोग में लाये जाते हैं, तब उनमें सन्धियों की भूलें कुछ लेखों में देखी गयी हैं। जिन लेखकों की लेखनी ने छन्दशास्त्र, मन मन्दिर और यशगान शब्दों का प्रयोग किया है, उन्हें इनकी सन्धियों पर विशेष ध्यान देना चाहिये। सन्धि-नियमों को दृष्टिपथ में रखते हुए हमें क्रमशः छन्द-शास्त्र, मनो मन्दिर और यशोगान शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिये।" डॉ० सुमन का निर्दिष्ट सन्धि-नियम संस्कृत के शब्द-रूपों पर ही लागू होता है, उनके हिन्दी रूपों पर नहीं। हिन्दी पाठक छन्द, शास्त्र, मनमन्दिर और यशगान शब्दों को ही शुद्ध मानता है। वर्तनी के सम्बन्ध में हमें हिन्दी की स्वाभाविक प्रवृत्ति की ओर ही ध्यान देना चाहिये। संस्कृत के व्याकरण नियमों के अनुसार शब्दों की सिद्धि का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। हिन्दी में 'शशि' में 'शि' ह्रस्व ही प्रचलित है, दीर्घ नहीं। इसी प्रकार 'करि' में में भी ह्रस्व 'इ' का ही प्रयोग मिलता है जबकि संस्कृत में ये दोनों शब्द दीर्घान्त हैं।

कई शब्द बोले एक प्रकार से जाते हैं और लिखे जाते हैं भिन्न प्रकार से। यहाँ ऐसे कतिपय शब्दों के उदाहरण दिए जाते हैं—

शब्दों का बोला जाने वाला रूप	शब्दों का लिखा जाने वाला रूप
सक्ता[1]	सकता

१. द्विवेदी काल के लेखक विकल्प में बोला जाने वाला रूप भी लिखते थे। यथा "देहाती होकर मैं देहातियों को भला कैसे भूल सक्ता हूं" नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६६ अंक ४ पृष्ठ ६६ पर राजा रामपालसिंह के ४ सितम्बर १६११ के पत्र से।

जिस्से[1]	जिससे
इस्से[2]	इससे
जिन्ने	जिनने, जिन्होंने
उन्ने	उनने, उन्होंने
ग्यान	ज्ञान
रिशि	ऋषि
किरपा	कृपा
गल्ती	ग़लती
मर्ता	मरता
प्रथक	पृथक्

'यें' और 'ए' के प्रयोग भी परिनिष्ठित हिन्दी में निश्चित नहीं हैं। इसका कारण क्षेत्रीय बोलियों की उच्चारण भिन्नता है। पूर्वी क्षेत्र विशेष कर अवधी-भाषी प्रदेश में 'खावेगा', जावेगा', आवेगा तथा ऐसा (अइसा) बोला जाता है, अतः उस क्षेत्र के लेखक भी इसी प्रकार का प्रयोग लेखन में करते हैं। पश्चिमी क्षेत्र में 'य' का प्रयोग अधिक प्रचलित है। अतः उस क्षेत्र के लेखक खायगा, जायगा, एसा, जेसा बोलते हैं परन्तु लिखते हैं ऐसा, जैसा ही हैं।

शब्दों के क्रिया रूपों में 'य' 'ए' व वर्णों की स्थिति क्षेत्रीय भिन्नता के कारण भिन्न पाई जाती है—यथा—जायगा, जायेगा, जावेगा, जाएगा, (ये रूप अन्य पुरुष के उदाहरण हैं) मध्य पुरुष में जायेंगे, जाओगे, रूप प्रचलित हैं।

हिन्दी जब देश की व्यवहार भाषा बन गई है तब उसे ग्रहण करने में अहिन्दी भाषियों के सामने जो समस्याएं हैं उनमें शब्दों की वर्तनी की भी एक समस्या है। 'लिंग' और 'ने' पर सर्ग के प्रयोग भी कम कष्टदायक नहीं है।

हम इस सुझाव से सहमत नहीं हैं कि हिन्दी में शब्दों का लिंग भेद और 'ने' का प्रयोग समाप्त कर दिया जाय। भाषा में परिवर्तन जन-समूह की स्वेच्छा से होता है, किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा नहीं होता। प्रत्येक भाषा में शब्दों का लिंग किसी नियम विशेष का सर्वथा अनुसरण नहीं करता। भारत अपनी जन्म-भूमि को माता के रूप में, जर्मनी पिता के रूप में ग्रहण करता है। अँग्रेजी में Sun पुलिंग, Moon स्त्रीलिंग हैं। हिन्दी में दोनों पुल्लिग हैं। अतः प्रत्येक भाषा अपने बोलने वालों की प्रकृति-प्रवृत्ति के समान अपने शब्द-रूप आदि को स्वीकार करती है। इस सत्य को विस्मृत नहीं करना चाहिए।

●

१. "विश्राम अवश्य कीजिए जिस्से आपका स्वास्थ्य ठीक रहे"—तिलकसिंह, वही।
२. "हम लोगों को इस्से अनुग्रहीत करेंगे"—१३ नवम्बर १९११ के पत्र से, वही।